बसवन्ना

राष्ट्रीय जीवन चरित

बसवन्ना

एम० चिदानंद मूर्ति

अनुवाद

विनोद खुराना

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण 1989 (शक 1910)

BASAVANNA (*Hindi*)

रु० **11·50**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित ।

आमुख

मैंने इस पुस्तक में बसवन्ना की विश्वसनीय जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयास किया। विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री का अभाव विषय को दुष्कर बनाता रहा है। अतः मेरे सामने इसके अलावा कोई रास्ता नहीं था कि बसव के लेखन, उपलब्ध अर्ध-ऐतिहासिक और लोक-साहित्य की मदद से बसव की जीवनी को लेखनबद्ध करूं। अंग्रेजी में बसव की अच्छी और प्रामाणिक जीवनी की एक लम्बे अर्से से जरूरत रही है, मैं उम्मीद करता हूं कि इस जरूरत को पूरा कर पाऊंगा।

कन्नड़ में मैंने बसव पर जो काम किया है, उसी के आधार पर यह जीवनी लिखी है। यह मेरे मूल कार्य का अनुवाद भर नहीं है। मैंने, न केवल इसमें नयी सामग्री का उपयोग किया है बल्कि नयी व्याख्याओं और घटनाओं को एक नये कोण से देखा है। लिखते समय, चूंकि मुझे भारतेतर अंग्रेजी पाठक का भी ख्याल रहा है, अतः मैंने भारतीयों द्वारा आमतौर पर ग्राह्य बहुतेरे संस्कृत शब्दों की व्याख्या का प्रयास किया है।

मैं, बैंगलोर के कृषि विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के सहायक प्रोफेसर श्री डी० ए० शंकर का आभारी हूं जिन्होंने पांडुलिपि देखी और उचित संशोधन किये। इस पुस्तक में कुछ जगहों पर उनकी आलोचना-सुझाव के कारण बहुत स्थानों पर सुधार संभव हुआ है।

—एम० चिदानंद मूर्ति

विषय सूची

1. बसवन्ना का युग

अक्सर यह कहा गया है कि भारतीय समाज मूलतः रूढ़िवादी है तथा अपनी सामाजिक संरचना में किसी बड़े परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता। किन्तु ऐसे उदाहरण हैं, जब इस समाज के रंगमंच पर विद्रोही नेताओं ने स्वीकृत सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध भूमिका अदा की है। वे अपनी निष्ठा के बूते समाज को एकजुट करके अपने सपनों के अनुसार ढालने में कामयाब हो पाये। भारतीय इतिहास के ऐसे कतिपय व्यक्तियों में बसवन्ना अन्यतम हैं। बसवन्ना के मत में आस्था रखने वालों की दृष्टि में उसका स्थान अवतार का है, समाजशास्त्र के अध्येता के लिए वह समाज सुधारक और क्रांतिकारी हैं, तथा अनेक लोगों के विचार में वह समाज सुधारक और मसीहा दोनों हैं।

स्रोत

बसव का जीवनकाल बारहवीं सती का मध्य है। किन्तु अन्य धार्मिक महापुरुषों के समान बसव के जीवनकाल में लिखे गए उसके जीवनवृत्त से हमारा परिचय नहीं है। जो कथित जीवनी लेखक हैं भी—वे, दरअस्ल पुराण लेखक हैं इतिहास लेखक नहीं। बसव को चमत्कारी मानने की गलतफहमी में, उन्होंने बसव को तमाम दिव्यशक्तियों से संपन्न देवता बना डाला। फिर भी जीवनी की रूपरेखा बनाने के लिए ये पुराण ही हमारे मुख्य स्रोत हैं। हमारा सौभाग्य है कि कन्नड़ भाषा में रचित हरिहर (1230 ई०) की 'बसवदेवर रागले' नामक लम्बा आख्यान हमें उपलब्ध है। लेखक की बसव से कालगत दूरी भी अधिक नहीं है। निश्चय ही लेखक की दृष्टि कथालेखक की है। फिर भी इसकी रचना में ऐतिहासिक महत्व की पर्याप्त सामग्री मिलती है। जानकारी के दूसरे स्रोत वे 'वचन' अथवा लघु रचनाएं हैं जो बसव और समकालीन भक्तों ने काव्यमय गद्य में रची हैं। बसव के इन वचनों से हम उसके व्यक्तित्व की टोह ले सकते हैं तथा ये उसके बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास को समझने में हमारी मदद करते हैं। इसके अलावा, हमें उस काल के अभिलेख मिलते हैं। हालांकि, किसी भी अभिलेख में न तो बसव और न ही उसके द्वारा किये गये सुधारों की चर्चा है, तब भी इनके जरिये हम उस समय का राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक

खाका तैयार कर सकते हैं। कुछ परवर्ती अभिलेखों में अवश्य उसका नामोल्लेख है तथापि वे उसके जीवन के संबंध में मौन ही हैं।

बसव और समकालीनों के बारे में कन्नड़ में विशाल साहित्य विकसित हुआ है। तेलगु में पालकुरि के सोमनाथ (1260 ई०) ने अमर रचना बसवपुराणमु लिखा जिसको भीमकवि ने 1369 ई० में कन्नड़ में अनुदित किया। यह कन्नड़ रूपांतरण मैसूर राज्य में सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। इसका अध्ययन-मनन गहन श्रद्धाभाव से होता था। इसकी लोकप्रियता की पुष्टि इसी से होती है कि इसकी हस्तलिपि की सैकड़ों प्रतियां इस क्षेत्र में मिलती हैं।

आरंभिक रचनाओं में बसव के जीवन के संबंध में मिलने वाले कई तथ्य परस्पर विरोधी हैं। उनसे कई गंभीर विवाद भी पैदा हो गए हैं। कई बार विवाद इस पर हो जाता है कि बसव को दिव्यपुरुष माना जाए अथवा महा-पुरुष जिसकी कुछ विवशताएं भी रही होंगी। प्रस्तुत लेखक का मत एवं दृढ विश्वास है कि बसव केवल इसलिए महान था कि वह बुनियादी तौर पर इंसान था तथा उसने महान मानवीय जीवन के अनुरूप कार्य किया।

सामाजिक भूमिका

बसव का जन्म वर्ण व्यवस्थाबद्ध समाज में हुआ था। इस व्यवस्था मे दो तथ्य लक्षित होते हैं।

(क) सामाजिक संरचना में हर जाति का अपना दर्जा होता था अतः जातियों का एक अनुक्रम था।

(ख) हर जाति का अपना बंधा हुआ पेशा था तथा किसी भी जाति में पैदा हुए व्यक्ति से अपेक्षित था कि वह उसी पेशे को अपनाए।

सामाजिक अनुक्रम में, ब्राह्मणों की स्थिति शीर्षस्थ थी तथा होलेय अथवा अछूतों की सबसे निचली। इन दोनों के बीच में व्यापारी, खेतीहर, बुनकर, कुम्हार आदि शेष जातियों की अवस्थिति है।

सामाजिक अर्थों में ब्राह्मण विशेषाधिकार संपन्न थे। उनमें अधिकांश शिक्षित थे तथा उन्हें ज्ञान और संस्कृति का आगार माना जाता था। राज्य की जिम्मे-दारी वाली नौकरियों के लिए राजा लोग ब्राह्मणों में से ही नियुक्तियां करते थे। अभिलेखों में उल्लिखित अनेक दण्डनाथ विविध अग्रहारों से संबंधित ब्राह्मण ही थे। अग्रहार उन ग्रामों की संज्ञा थी जिन्हें राजा अथवा अन्य धनी व्यक्तियों द्वारा ब्राह्मणों को दान में दिया गया हो। इस प्रकार के अनुदानों से ब्राह्मणों को अध्ययन तथा अध्यापन में पूर्णतया एकाग्र होने का अवसर रहता था। इस प्रकार अग्रहार विद्या के महान केन्द्र बने तथा उनमें बड़े-बड़े विद्वानों का निवास

था। समूचे देश से ऊंची विद्या सीखने को लालायित विद्यार्थियों के झुंड इन केन्द्रों की ओर लपकते थे। उन केन्द्रों में पढे तथा पढ़ाए जाने वाले विषयों की स्पष्ट जानकारी हमें अभिलेखों से मिलती है। इनमें से कुछ थे—षडंग सहित वेद, स्मृति, पुराण, व्याकरण, पिंगलशास्त्र, षड्दर्शन, काव्य, हस्त्यायुर्वेद, अश्वायुर्वेद तथा आयुर्वेद आदि। (अग्रहार के मुखियाओं को महाजन अर्थात् महान पुरुष कहा जाता था। वे समूह भावना से कार्य करते थे तथा अग्रहारों की विविध गतिविधियों की देखभाल करते थे। हम पाते हैं कि कई बार ये महाजन अपने मुखिया को चुनकर उसके नेतृत्व में काम करते थे। इसकी चर्चा प्रासंगिक होगी कि बसव ऐसे ही एक मुखिया का बेटा था।)

ब्राह्मण शिक्षित और ज्ञानी थे—यह तस्वीर का केवल एक पहलू है। जनता के सामाजिक और धार्मिक अधिनायक होने के विशेषाधिकारों की वजह से वे अपने को शेष जातियों से ऊंचा मानते थे। उन्हें अपने वर्ण का अभिमान था तथा वे अन्य जातियों को तुच्छ मानते थे। वे मानवमात्र की समानता आदि ऊंचे आदर्शों की शिक्षाओं वाले शास्त्रों का पारायण करते थे। मगर ये आदर्श शोथे ही थे क्योंकि व्यवहार में इनकी अवधारणा अपवादस्वरूप ही दिखाई देती थी। बसव ने ब्राह्मणों की यह कहकर निंदा की है कि 'शास्त्र एक रास्ता दिखाते हैं और ये (ब्राह्मण) दूसरी ओर चलते हैं।' इस तरह आदर्श और वास्तविकता में खाई मौजूद थी। उनके धर्म के अलावा कर्मकांडों का एक ऐसा जाल था जो तब तक अनुपयोगी हो चुका था। उनमें से अधिकांश के मत में ज्ञान और भक्ति नहीं वरन् यह कर्म ही महत्वपूर्ण था। ईश्वर के प्रति अनुरक्ति का वे केवल दिखावा करते थे। जैसाकि एक तत्कालीन टिप्पणी है : यह छोटे मटके में उगे अंकुर के समान है जो न तो नीचे अपनी जड़ें फैला सकता है और न ही ऊपर बढ़ सकता है और न ही फलवान हो सकता है। उनके अनुष्ठानपूर्ण धर्म की इयत्ता का परिचय हमें उनके द्वारा निष्पादित विविध यज्ञों से मिलता है। यह विश्वास करने का आधार है कि इन यज्ञों में पशुबलि होती थी। यज्ञ-वेदी पर ले जाये जा रहे मेमने के क्रन्दन की करुण तस्वीर तो बसव ने ही दी है।

उच्चतम वर्ण ब्राह्मण और सबसे छोटी जाति चांडाल अथवा अछूत के बीच अनेक पेशेवर जातियों की गणना है। इनमें शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापारी जाति थी। उनकी अपनी श्रेणियां थीं। वे देश की सारी अर्थ-व्यवस्था को नियंत्रिण करते थे। अनेक अभिलेख मंदिरों तथा अन्य धार्मिक संस्थानों के लिए प्रचुर दान की चर्चा करते है। किन्तु सदा की तरह ऐसे व्यापारी थे जो जनता के अज्ञान की बदौलत कमाई करते थे और शोषणकारी थे। उनमें कइयों ने सरोवरों और मंदिर का इस आशा से निर्माण करवाया कि इससे व्यापार के

दौरान किए गये पापों से राहत मिल जायेगी। बसव के समकालीन एक जैन मतावलम्बी ब्रह्मशिव ने व्यापारियों की कटु आलोचना की है क्योंकि वे दो तरह के बाट और नाप रखते थे—एक खरीद के लिए और दूसरी बिक्री के लिए। अमीर और गरीब के बीच भारी अंतराल था—धनी तमाम ऐश्वर्य का भोग करते थे तथा निर्धन अपनी दैनिक क्षुधापूर्ति के लिए दिन रात खटते थे। तब भी समाज में धनवानों की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। बसव ने एक बार टिप्पणी की है कि लोग उनको नमन और पादस्पर्श करते हैं जो घोड़ों पर सवार है तथा जिनके ऊपर छत्र तने हुए हैं। ब्राह्मणों और धनिकों की राजा तक पहुंच थी—इस तरह उनके काम सध जाते थे। निम्न तबके के गरीब और अन्त्यज् वास्तव में शोषित थे।(छोटी जातियों में कई निषेध थे तथा हर जाति के विशेषाधिकार थे जिनकी वे जातियां प्राणपण से रक्षा करती थीं। प्राचीन कर्नाटक में हर व्यक्ति अपनी जाति का व्यष्टिमात्र था। उसके व्यक्तित्व का मूल्य तभी तक था—जब तक वह अपनी जाति की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता था। किसी भी नियम विरोधी चेष्टा की गंभीर प्रतिक्रिया होती थी तथा ऐसे व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। जाति से बहिष्कार के परिणाम बहुत भयानक थे। परिणामतः प्रत्येक जाति एक पृथक समूह थी। हर जाति के लोग नगरों और गांवों की गलियों में इकट्ठे रहा करते थे। जबकि प्रत्येक जाति किसी से अपने को घटिया मानती थी किन्तु अंततः वह तसल्ली कर लेती थी कि किसी दूसरे से वह ऊंची भी है।)

अब समाज में नारी की स्थिति पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः नारियों को गम्भीर शिक्षा के योग्य नहीं माना जाता था। फलस्वरूप हमें ऐसी बहुत कम नारियों की सूचना प्राप्त है, जो सुपठित हों तथा पुरुषों से शास्त्रार्थ कर पायें। अपवादों में एक नाम एमीनिर्मदी—इनका उल्लेख नवीं या दसवीं शती के एक अभिलेख में मिलता है। राज-परिवार से संबद्ध अनेक महिलाएं शिक्षित हुई हैं तथा उन्होंने संगीत-नृत्य आदि ललित कलाओं की ओर ज्यादा ध्यान दिया। हमें ऐसे शस्त्रज्ञ ब्राह्मण की कहानी का पता चलता है जिसकी पुत्री पूर्णतः निरक्षर थी। यह केवल इस तथ्य का सूचक है कि थोड़ा बहुत जो भी प्रशिक्षण लड़कियों को मिलता था उसका उद्देश्य यही था कि वे कुशल पत्नियां और माताएं सिद्ध हो सकें। अक्का देवी जैसी अपवाद बहुत ही कम हैं। अक्कादेवी ने कर्नाटक के एक भाग पर न केवल योग्य शासन किया अपितु युद्ध संचालन भी किये। नियमतः नारियों की हैसियत पुरुषों से छोटी मानी जाती थी। सामान्य विश्वास यही था कि रसोई उसका विद्यालय है, पति परमेश्वर है तथा पतिभक्ति मोक्ष का उपाय है।

अछूतों की स्थिति दयनीय थी। उन्हें होलेय अर्थात् प्रदूषक या अन्त्यज पुकारा जाता था। इसके अतिरिक्त उन्हें अनामिक और संबोली भी कहा जाता था। अनामिक इसलिए कि वे नामविहीन हैं और संबोली इसलिए कि वे नगर अथवा गांव में घुसते ही अपने आने की घोषणा करते थे जिससे उच्चवर्ण के लोग उनका परिहार करके अपने को प्रदूषित होने से बचा सकें। ये अन्त्यज गांव की सीमा पर रहते थे और कभी कभार ही गांव में प्रवेश करते थे। दूसरी जाति के लोग उनसे मेल मिलाप नहीं रखते थे बल्कि उनका इनके प्रति अत्यन्त घृणापूर्ण व्यवहार था। इन लोगों को कोई अच्छा धंधा अपनाने की अनुमति नहीं थी। श्रमिक वर्ग का मुख्य भाग यही थे और इनमें से अनेक कुलीन घरानों में दास थे। वे चीकट कपड़े पहनते थे, छायी हुई झोपड़ियों में रहते थे और मृत पशुओं का मांस खाते थे। मरे जानवरों को गांव से बाहर ले जाना, चमड़ा कमाना और जूते, नावें तथा कोड़े आदि उपयोग की वस्तुएं तैयार करना उनका काम था। इनको बेचकर वे गुज़र करते थे।

समाज में असंख्य अंधविश्वास प्रचलित थे—कुछ तो सामान्य थे पर अन्य काफी भयानक थे। कई देवी-देवता थे, छोटी जातियों में जिनके भक्तों की विशाल भीड़ थी। तत्कालीन साहित्य में उनकी सूची है। उनमें से कुछ के नाम हैं—मैलारा, मालची एक्कनटी, मारी, मसानी, खेचर, एलम्मा, भैरव और बनशंकरी। मान्यता थी कि ये देवता, पेड़ों, खेत की सीमाओं, नदियों, तालाबों, कुओं, धनुषों और बर्तनों आदि में निवास करते है। इस जीव वाद के परिणामस्वरूप इन शक्तियों को संतुष्ट और शांत करने के अनुष्ठान भी थे। आग पर चलना, तीखी सुई से मुंह छेद कर बन्द कर लेना, अपने अंगों को छेद लेना, अपना रक्त बलि में देना, मानव मल को सिर पर ढोना, अपने को कोड़ों से मारना और उंगलियों से जलता दिया बुझाना आदि किस्म के संकल्प इन अनुष्ठानों में आते थे। लोगों पर आने वाली तमाम मुसीबतों और रोगों की वजह इन देवताओं का प्रकोप समझा जाता था और ऊपर वर्णित संकल्पों के जरिये देवता शांत हो सकते है तथा अनुग्रह कर सकते हैं।

यहां भी सामान्य जन को पुरोहित ठगते और उनका शोषण करते थे। लोगों को सदा भयाक्रांत रखा जाता और पुरोहित की शरण में जाने को विवश किया जाता। पुरोहितों को देवताओं से कोई विशेष प्यार नहीं था बल्कि बैठे ठाले जीविकार्जन का यह तरीका था। बसव के समकालीन अल्लामा ने कहा है कि धर्म सर्वोत्तम व्यापार है! यह पूरे पुरोहित वर्ग पर लागू होता है—चाहे वे ब्राह्मण पुरोहित हों या अब्राह्मण।

धार्मिक स्थितियाँ—

बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कर्नाटक में जैन, वैष्णव, शैव और बौद्ध धर्मों का प्रचलन था। इन सब का अपना इतिहास और कर्नाटक की सांस्कृतिक विरासत में योगदान है।

इस अंचल में जैन धर्म का आगमन ई० पू० पहली शताब्दी या उससे भी पहले हुआ। उत्तरोत्तर आने वाले राजवंशों ने इसे संरक्षण प्रदान किया। गंग वंश ने इसे सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया तथा नवीं और दसवी शतियों में यह धर्म सर्वप्रधान हो गया। जैनों ने सबसे पहले कर्नाटक की भाषा का परिष्कार किया तथा हमारी अब तक की जानकारी के अनुसार जैनों ने कन्नड़ में सबसे पहले साहित्य-सृष्टि की। दसवीं शती की समाप्ति पर, गंग वंश के पतन के साथ-साथ जैन धर्म का ह्रास होना शुरू हुआ। शनैः शनैः इसका प्रभाव जनता से उठता गया तथा बारहवीं सदी तक पहुंचते-पहुंचते, निश्चय ही यह सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म नहीं रह गया था। हमारे पास प्रमाण है कि जैन मतावलंबियो ने वैष्णव और शैव धर्मों को सामूहिक रूप से अपनाया। हम इसका कारण सुस्पष्ट रूप से बताने की स्थिति में नही है कि क्यों एक समय के बहुत लोकप्रिय धर्म ने दूसरे धर्मों के लिए जगह खाली कर दी। जैसा कि हम पहले देख चुके है कि गंग वंश के पतन से जैन मत को गहरा धक्का लगा। पाशुपत शैव धर्म लोकप्रिय होने की बहुत कोशिश कर रहा था। पाशुपत और रामानुज के श्री वैष्णव धर्म से जैन धर्म को गम्भीर खतरा था। कर्नाटक में दिगंबर मत का प्रचलन था। इस मत के अनुसार नारी योनि में मोक्ष संभव नहीं है। मर्यादित तथा धार्मिक आचरण से वे अगले जन्म में नर-देह पाकर ही भव-चक्र से छुटकारा पा सकती है। जैन धर्म में दिव्य कृपा का स्थान नहीं है। हर व्यक्ति को कैवल्य प्राप्ति के लिए खुद ही साधना करनी पड़ती है तथा अंतिम मुक्ति के लिए उसे कई जन्म लेने पड़ सकते हैं। यह बात एक शिक्षित और बुद्धिवादी व्यक्ति को जंच सकती है। सामान्य जन के लिए यह समझना दूभर है कि कैसे ईश्वरीय कृपा के बिना इसका कोई उपाय है। नग्न संत दिगम्बर महान् व्यक्ति थे उनके संयत जीवन के प्रति सबको श्रद्धा होनी चाहिए। किन्तु उनकी नग्नता और बाह्य अस्वच्छता के प्रभाव स्वरूप यह सामान्य विश्वास बन गया था कि जिसके जन्मलग्न में शनि कुपित है, वह आगामी जन्म में दिगम्बर संत होगा।

श्री वैष्णव धर्म बारहवीं शती के पूर्वार्ध में धीरे-धीरे लोकप्रियता पा रहा था। इसका प्रचार तमिलनाडू के रामानुजाचार्य कर रहे थे। उन्होंने अपने प्रदेश के चोलों के अत्याचारों से तंग आकर कर्णाटक में शरण ली हुई थी।

वे होसयार नरेश विष्णुवर्धन को दीक्षित करने में सफल हो गये जिससे उसके राज्य में उन्हें सबल आधार मिल गया।

रामानुजाचार्य का दृष्टिकोण उदार था। कहा जाता है कि परंपरावादी होने के बावजूद उनके मन में अछूतों के प्रति सद्भावना थी तथा उन्होंने उनका नामकरण तिरुकुल (ईश्वरीय परिवार से संबद्ध) कर दिया था। उनके धर्म का सार है भक्ति अर्थात् ईश्वरीय अखण्ड निष्ठा और सर्वशक्तिमान को अनन्य समर्पण। इस धर्म तथा बसव के वीर शैवधर्म में कई बातें एक जैसी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों एक ही मूल से विकसित हुए हैं। दोनों में मुख्य अंतर यह है कि एक विष्णुकेन्द्रित है और दूसरा शिवकेन्द्रित।

कर्णाटक में बौद्ध धर्म कभी भी लोकप्रिय नही हुआ, हालांकि अशोक के समय यहां इसने प्रवेश किया था। बाल्लीगवे, डम्बल, कोलिवाड, सन्नटी और काद्री इसके केन्द्र रहे है जहां तारादेवी के मन्दिर रहे थे। बाल्लीगवे, डम्बल और काद्री में विहार थे जो विद्या के केन्द्र थे। यहां बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय का चलन था।

बारहवी शताब्दी में सबसे लोकप्रिय शैवधर्म था। शैवधर्म अर्थात् शिव भक्तो द्वारा आचरित धर्म। किन्तु यह एक व्यापक संज्ञा है क्योंकि यह कई संप्रदायों में विभक्त था जिनका उल्लेख अभिलेखों और ग्रंथों में मिलता है। उनमें सर्वप्रमुख था लाकुलीश-पाशुपत मत जिसके अनुयायियों की कर्नाटक में भारी संख्या थी। यह मत कालमुख अथवा कालानन संप्रदाय से काफी मिलता जुलता है। दूसरे मत के लोगों को कालमुख इसलिए कहा जाता था कि उनके चेहरे पर काले चिह्न पुते होते थे। इन दोनों संप्रदायो के गुरू बड़े विद्वान हुआ करते थे तथा वे मठाधीश होते थे। ऐसा ही एक मठ शिमोगा जिले के बाल्लीगवे स्थान पर था। यहां सन्यासी रहते थे, एक छोटा विश्वविद्यालय था जहां कई विषयों का अध्ययन-अध्यापन होता था, ललित-कलाओं का प्रशिक्षण संस्थान था जहां कलाकारो को प्रोत्साहन मिलता था, एक चिकित्सालय भी था जहां निश्शुल्क चिकित्सा होती थी। इस मठ को दक्षिण-केदार भी पुकारते थे (अर्थात् दक्षिण भारत का केदार) तथा इसके व्यक्ति उन शताब्दियों में सर्वाधिक प्रभावशाली थे। इन सम्प्रदायो से जुड़े सन्यासी मठों में वास करते थे तथा अपने सामाजिक-परिवेश से उनका अन्तरंग रिश्ता था। वे छात्रो को शिक्षा देने तथा मंदिर-सरोवरों के निर्माण करवाने के जरिये समाज के उत्थान के लिए कड़ा संघर्ष कर रहे थे। तब शैवों में नाथ अथवा कापालिक संप्रदाय भी था, जिसके अवलंबी नव नाथों के अनुवर्ती थे।

अन्यत्र कई सम्प्रदाय थे—जिनका विस्तृत परिचय प्राप्त होना अभी शेष है।

उदाहरण के लिए हमारे पास मार्ग शैव, अन्त्यशैव और शुद्ध शैव हैं। इनमें अंतिम तो शायद तमिलनाडू का शैवमत ही है। नयनार अर्थात् तमिलनाडू के रहस्यवादी संत पांचवीं से नवीं शताब्दी के बीच हुए हैं और इन्होंने भक्तिपरक साहित्य रचा है। इन तरेसठ वृद्धों को कर्नाटक में शैव सम्मान की नजर से देखते थे तथा इनके पदों को भक्ति भावना से गाते थे।

इस भूमिका में बसव और उसके शिष्यों द्वारा प्रचारित वीर शैवधर्म का उदय हुआ। बसव के इस धर्म की दार्शनिक पीठिका तथा इसके सामाजिक प्रभावों की चर्चा हम बाद में करेंगे।

2. बाल्यकाल

बसवेश्वर का जन्म मैसूर रियासत के बीजापुर जिले के बागेवाड़ी तालुके के केन्द्र वाडीग्राम में हुआ था। इसको बसवना बागेवाडी (बसव की बागेवाडी) भी कहते हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं शती के दौरान यह ख्यातिप्राप्त अग्रहार था। पिछले अध्याय में हम देख चुके है कि अग्रहार उन गांवों को कहते हैं जो राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान में मिलते थे, जिससे कि वे निश्चिन्त होकर विद्यार्जन कर पायें। बागेवाडी में पांच सौ ब्राह्मण परिवार दूसरी जातियों के साथ रहते थे। यह आवश्यक नहीं था कि अग्रहार में केवल ब्राह्मण ही रहें। अभिलेखों में इसे महा-अग्रहार कहा गया है तथा यहां के ब्राह्मणों की विद्वता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। इस ग्राम का नियंत्रण बेशक ब्राह्मण करते थे किन्तु इसमें भिन्न धर्मावलंबी दूसरे लोग भी रहते थे जो अलग-अलग पेशों से जुड़े हुए थे। अधिकांश ब्राह्मण शैव थे और संभवत: नगर की गतिविधियों का केन्द्र वहां का विशाल शिव मंदिर था।

नगर के मुखिया का नाम मंदगेय मदिराज था और उसकी पत्नी मदाम्बे थी। वे सांख्यामन गोत्र के काम्मे कुल के शैव ब्राह्मण थे। काम्मे अभिधान से स्पष्ट है कि सुदूर अतीत में इस वंश के लोगों ने आंध्र के गुंटुर और नेल्लोर अंचलों से कर्नाटक में स्थानंतरण किया था। अग्रहार-प्रधान होने के कारण मदिराज अतिसम्मानित व्यक्ति थे। यूं भी उनका व्यक्तित्व रोबीला था।

बहुत समय तक इस दम्पती का जीवन पुत्रविहीन था। मदाम्बे ने ज्योतिषियों से पूछा तो उन्होंने 'वृषभव्रत' के अनुष्ठान की सलाह दी। उसने व्रत अंगीकार करके बहुत भक्तिभाव से उसे निष्पन्न किया। उसने नन्दी देव से पुत्र की अभ्यर्थना की तथा उसका नाम नंदी रखने का संकल्प किया। उसे पुत्रलाभ का अनुग्रह हुआ। माता-पिता ने पुत्र का नाम बसव (संस्कृत-वृषभ) रखा। शिशु 'चंद्रकिरणों' के समान सुंदर था तथा लाड़ करने वाले तमाम लोगों को उदारतापूर्वक मधुरस्मित का दान करता था।

शिशु ने बाल्यावस्था में पदार्पण किया। संस्कृत के श्रुतिधरों और रूढ़िवादियों के परिवार का वह बालक था। इस घर में दिन-रात वेदों का मंत्रोच्चार चलता रहता था। छोटे बालक बसव को ही असंख्य वैदिक मंत्र मुखस्थ

थे। वह उनका सस्वर पाठ कर सकता था। उसके पिता चाहते थे कि वह भी परम्परागत ब्राह्मण कर्त्तव्य निभाए तथा शास्त्रज्ञ बने और ब्राह्मण जाति का नेता भी। आदर्श ब्राह्मण होने के लिए षट्कर्म अच्छी तरह से करने होते थे—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह। संक्षेप में, मदिराज की इच्छा थी कि बसव ऐसा ही ब्राह्मण हो। मगर घटनाचक्र ने दूसरी ही दिशा अख्तियार की।

बसव बहुत ही संवेदनशील और बुद्धिमान बालक था। उसके माता-पिता धनी ही नहीं स्नेही भी थे। मुखिया की संतान होने के कारण वह बच्चों में विशिष्ट हैसियत वाला था। ऐसा लगता था कि उसे सुखी युवा बनाने के लिए प्रत्येक वस्तु सन्नद्ध है। शायद सुख-सुविधा के उपभोग से भरे जीवन ने उसे संसार को समझने-परखने का दूसरा कोण प्रदान किया। कुछ संत्रासकर अनुभवों से उसे गुजरना पड़ा। यज्ञवेदी पर ले जाये जाते मेमनों के करुण क्रंदन उसके सपनों में गूंजते रहते और वह कांप-कांप उठता। नागपंचमी उत्सव के मौके पर उसने स्वयं नागमूर्त्ति पर दूध और घी डाला तथा पूजा की। किन्तु जब वास्तविक सांप आ गया तो नागपूजा करने वाले उसके अपने लोगों ने सांप को मार डाला। यह ऐसी बात थी जिसे उसका बालमन समझ सकने में असमर्थ था। अग्न्याधान में उसने स्वयं अपने पिता का हाथ बंटाया था। किन्तु जब किसी वस्तु को आग लगती तो उसे रेत और पानी से बुझा दिया जाता था। इसे भी बालक ग्रहण नहीं कर पाता था। वह संपन्न और विपन्न लोगों के जीवन-स्तर के भेद को महसूस करने लगा था। वह स्वयं सुंदर वस्त्र धारण करता था और बढ़िया भोजन करता था किन्तु नंगे और भूखे बच्चों को देख दुखी होता था। वह उनके साथ मेल बढ़ाकर खेलना चाहता था, किन्तु उसकी कठोर मनाही थी। कारण स्पष्ट था कि वे गरीब और छोटी जाति के थे।

ब्राह्मणों की दोहरी जिंदगी से उसके बोध में उथल-पुथल लगी हुई थी। एक ओर तो वे नित्य स्नान करते थे, धार्मिक कर्त्तव्य करते थे, ईश्वर, परलोक और उच्चादर्शों की चर्चा करते थे, मगर दूसरी ओर उनके अन्तःकरण स्वार्थी और स्वकेन्द्रित थे। उनमें से अधिकांश की दृष्टि में प्रभु का नाम सांसारिक लक्ष्यों को साधने का उपकरण मात्र था। समूचे वर्ष वे भोर से लेकर सांझ तक जो बेशुमार अनुष्ठान किया करते थे—यही उनका धर्म था। यह कहना पुनरुक्ति ही होगा कि इस सबसे वे बेहतर इंसान नहीं बन सकते थे अलबत्ता साधारण लोगों से उनका फासला बढ़ ही जाता था।

इस तरह वह बालक अधिकाधिक विचारशील और आत्मविश्लेषी होता चला गया। जन्मना ही उसे अकालप्रौढ़ मस्तिष्क मिला था। उसका चिंतन

अपनी आयु की तुलना में कहीं ज्यादा था। मित्रों के बावजूद वह अकेला था। उनका ध्यान उसके चौंकाने वाले गुणों पर गया। वह मैत्रीपूर्ण, सहायताशील, आकर्षक और मृदुभाषी था। वह उनका नेता था मगर उन पर हावी नहीं होता था। वह धूर्त्तता को सहन नहीं कर सकता था। वह उनके प्रति कठोर था जो दूसरों से बुरा बर्ताव करते थे। ये गुण, शायद उसने माता-पिता से ग्रहण किये थे।

ईश-भक्तों की कहानियां सुनने में उसका मन रमता था। वह धर्मवार्त्ताओं और 'प्रसगों' में बिना चूक जाया करता था क्योंकि वहां भक्तजनों के किस्से कहे जाते थे। दो कथाओं ने उस पर गहरी छाप छोड़ी। एक तमिलनाड् के संत कनप्पा के बारे में भी। कनप्पा एक बहेलिया था जिसे ईश्वर और धर्म के विषय में कुछ अता पता नहीं था। शिकार उसका घधा था और उसका अज्ञान इस कदर था कि 'हत्या पाप है' यह उसकी सोच में नही था। एक बार वह जगल में हिरण का पीछा कर रहा था। वह जंगल में भटक गया और अचानक एक निर्जन शिव मंदिर में पहुंच गया। उसने शिव-मूर्ति से हिरण का पता पूछा तो मूर्ति ने बतलाकर उसकी सहायता की। कनप्पा इससे प्रभावित हुआ और उसने शिव से कहा कि अबसे वह भी वही रहकर शिव का एकांत दूर करेगा। वह जानवरों को मारता और महेश्वर को मांस अर्पित करता था। पानी भरने का कोई पात्र उसके पास नहीं था तो मुंह में ही पानी भरकर वह शिवमूर्ति पर कुल्ला कर देता था। कोई एक ब्राह्मण केवल दिन के समय ही मन्दिर मे आता था और आगम विधि से पूजा संपन्न करता था। पुरोहित के लिए यह एक वृत्ति थी—इमसे अधिक नहीं। किन्तु शिव असभ्य और अज्ञानी कनप्पा को ज्यादा चाहता था बजाए सभ्य और ज्ञानी ब्राह्मण के। वह संसार को कनप्पा की भक्ति की वास्तविकता प्रदर्शित करना चाहता था और उसने अपनी आंखों से खून बहाना शुरू किया। यह देखकर ब्राह्मण पुरोहित तो भयभीत होकर भाग निकला, कनप्पा ने मगर श्रद्धा से अपनी दोनों आंखें निकालकर शिव को अर्पित कर दीं। ईश्वर सदा आन्तरिक स्वच्छता पसंद करते है बाहरी दिखावा नहीं। छोटे बसव के नयन सजल हो जाते और वह अक्सर कल्पना करता कि वह छोटी जाति में पैदा हुआ है तथा प्रेम और स्वार्थ विसर्जन से ईश्वरीय अनुकम्पा का पात्र बना है।

दूसरी कथा जिसने बसव को बहुत प्रभावित किया, वह थी मदर चन्नप्पा की। मदर का अर्थ है अन्त्यज और अछूत। चन्नप्पा करिकाल चोल की घुड़साल में नौकर था। महेश्वर के लिए उसके मन में अपरिमित प्यार था। कारिकाल चोल स्वयं बड़ा शिवभक्त था किन्तु वह नहीं जानता था कि उससे भी बड़ा शिवभक्त स्वयं उसका नौकर है। वह प्रतिदिन ईश्वर को राजसी भोजन

अर्पित करता था किन्तु शिव थे कि लौटा ही देते थे। शिव का कहना था कि चन्नप्पा के घर का अम्बली (दलिया) खाने के बाद इन मिठाइयों से उन्हें अरुचि हो गयी है। राजा के लिए यह चौंकाने वाली बात थी और उसने उस महान व्यक्ति की झोंपड़ी की तलाश शुरू कर दी। चन्नप्पा राजा को देखकर भयभीत हो गया और खतरा महसूस करने लगा। किन्तु राजा ने सीधे उसके पास जाकर दंडवत् किया। बसव के बालपन पर छाप छोड़ने वाली दो कथाएं और थीं—श्रीमल्ल और दसीमय्या की। श्रीमल्ल ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए अपने पुत्र की बलि देने को तत्पर हो गया तथा दसीमय्या ने अपना नया कंबल बेझिझक ईश्वर को सौंप दिया था। ऐसी तमाम कथाएं इस ओर संकेत करती हैं कि ईश्वर की नजर में मनुष्य की जाति और कुल महत्त्वहीन हैं। बल्कि ईश्वर प्राप्ति के रास्ते में ये बाधा ही साबित हो सकते है क्योंकि ऊंचे घर में जन्म से नियमत: अहंकार बढ़ता ही है। वास्तविक महत्त्व प्रयोजन की ईमानदारी और भक्ति है जिसके सहारे मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता है। निर्धन एवं दलित के लिए ईश्वर के मन में पक्षपात ही हो सकता है जैसे एक मां का अपने रुग्ण बच्चे के प्रति ज्यादा अनुराग हो जाता है। ईश्वर प्राप्ति के लिए शास्त्र ज्ञान सहायक हो सकता है। किन्तु वह एकमात्र जरिया नहीं है।

हमारा आशय यह नहीं है कि बसव ने इन बातों पर तार्किक पद्धति से सोचा होगा। ये बातें धुंधले तौर पर उसके बोध में थीं और समय के साथ स्पष्ट होकर धारणाओं की शक्ल में बदल गई। वह अनुभव करता था कि उसका जगत् अनुमति और निषेधों वाला है जो नियमों और मर्यादाओं से संकुल है। यह अंधे शास्त्रों का जमाना था—वैसा संसार नहीं था जिसमें आत्मा, खग की भांति मुक्त विचर सके। ईश्वर तो तमाम शास्त्रों और आदेशों से परे है। उसे अनुभव होता था कि उसे एक कृत्रिम जगत में—एक कारा में रहना पड़ रहा है जबकि प्रकाश और स्वतन्त्रता की दुनिया तो इससे परे है। वह वहीं जाकर एक सच्चे भक्त का जीवन जीना चाहता था जो मुक्त इंसान होता है; ईश चरणों को छोड़कर जो किसी से नहीं बंधता।

इस संसार से पलायन की इच्छा बल पकड़ने लगी। इस आडम्बर की दुनिया में रहना लगातार मुश्किल होता जा रहा था। वह अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए उचित अवसर की खोज में था: अवसर आया और बसव ने उसका उपयोग किया। संभवत: यह उसके जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी और इससे उसके जीवन ने नया मोड़ ले लिया।

प्रत्येक ब्राह्मण लड़के के लिए शुद्धीकरण का उपनयन नामक संस्कार अनिवार्य होता है। उपनयन का अर्थ है साथ ले जाना। इस संस्कार का आशय

है कि बालक को गुरू के पास ले जाकर सौंप दिया जाए जिससे गुरू उसे शिक्षित और विनीत कर सके। बच्चों को पांच वर्ष की वय में पढ़ने और लिखने में लगा दिया जाता था। किन्तु शिक्षा की औपचारिक दीक्षा आठ वर्ष होने पर ही होती थी जब उपनयन का अनुष्ठान होता था और बालक को गुरू के पास पहुंचाया जाता था।

अब बसव आठ वर्ष का हो चुका था। किसी भी वत्सल पिता के समान, मदिराज ने भी दीक्षा देने के लिए सारी व्यवस्था कर ली थी। मगर उसे यह जानकर आघात लगा जब बसव ने घोषणा कर दी कि वह ऐसे संस्कारों में रुचि नहीं रखता और उपवीत धारण नहीं करेगा। पिता एक क्षण के लिए भी इस पर विश्वास नहीं कर सकता था। उसने बसव को मनाने के लिए उक्तियां दीं कि जनेऊ धारण करना उनके धर्म का अभिन्न अंग हैं और उपवीत विहीन व्यक्ति ब्राह्मणत्व से वंचित हो जाता है। पिता ने समझाया कि उसका ब्राह्मण कुल में जन्म लेना एक महान् घटना थी। बसव ने पिता के उपदेश का जवाब सपाट न दिया और व्यंग्यपूर्वक कहा कि ब्राह्मणत्व और भक्ति आपस में अनमेल है। ब्राह्मण कभी ईश्वर का पुत्र नहीं हो सकता और ईश्वरीय कृपा पाने के इच्छुक को ब्राह्मणत्व त्याग देना चाहिए। और भी तर्क करते हुए उसने कहा कि ब्राह्मण धर्म 'कर्म' का प्रचार करता है भक्ति का नहीं। बसव अपने आग्रह पर डटा रहा, बल्कि यह भी धमकी दी कि अगर उसे बलात् उपनीत किया जाएगा तो वह घर से भाग जाएगा। दूसरी ओर मदीराज, जैसे तैसे इस संस्कार को पूरा कर डालना चाहता था। प्रश्न केवल बसव को ब्राह्मणत्व में दीक्षित करने का नहीं था बल्कि परिवार की प्रतिष्ठा का भी था। लगता है कि मां ने प्यार भरे ढंग से बसव से जिरह की। अंततः न चाहते हुए भी वह इस संस्कार के लिए तैयार हो गया। उसके लिए यह बड़ी यंत्रणा थी जिसे उसको सहन करना ही था। यह समूचा उत्सव उसको निरर्थक लग रहा था। उसे उपवीत पहनाकर गुरू के पास शिक्षा के लिए ले जाया गया। माता-पिता ने राहत की सांस ली, भारी विपत्ति टल गई।

3. मुक्त जगत में

विपत्ति समाप्त नहीं बल्कि स्थगित ही हुई थी। बसव ने बहुत घृणा के साथ ही उपनयन संस्कार के लिए सहमति व्यक्त की थी। अब वह महसूस करता था कि यज्ञोपवीत वस्तुतः बंधन का सूत्र है। उसकी दृष्टि में यह उन तमाम सामाजिक बुराइयों का प्रतीक था जिनको उसने देखा और अनुभव किया था। बहुत ही विवशता और संकोच से उसने उपनयन के बाद वाले कर्मकांड पूरे किए, मसलन गुरूजनों के पीछे-पीछे उसने तोते की तरह गायत्री मंत्र को दुहरा दिया।

उसकी विधिवत् शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। हम देख चुके हैं कि वह नगर अग्रहार था जहां महान् विद्वान् रहते और पढ़ाते थे। उसको अध्यापकों की खोज में बाहर जाने की विवशता नहीं थी। अपने नगर के गण्य मान्य व्यक्तियों से ही उसने षडंग सहित वेद, व्याकरण, पिंगलशास्त्र, संगीत, साहित्य, षड्दर्शन, हर-रहस्यागम जैसे शैवागमों आदि का अध्ययन किया (उसकी बाद की रचनाओं से प्रकट है कि उसने अपने काल की परम्परागत विद्या को गहराई से समझा और वह ज्ञान की कई शाखाओं में पारंगत था)। उसकी मेधा तीव्र और स्मृति स्पृहणीय थी।

अध्ययन के विषयों में वेदों का स्थान सर्वोपरि था। विद्यार्थी से यह अपेक्षा होती थी कि वह उन्हें कंठस्थ करे तथा विधिवत् उच्चार करे। यह एक सामान्य विश्वास था कि वैदिक सूक्तों का अर्थज्ञान अनिवार्य नहीं है। सूक्तों के यंत्रवत् सही उच्चारण का ही आग्रह होता था। बसव को इस विधि से तीव्र घृणा थी। अपनी एक रचना में बसव ने ऐसे श्रोत्रियों की तुलना भारवाही गधों से की है क्योंकि ये जिस वाङ्मय को सिर पर ढो रहे हैं उसके अर्थ से अनभिज्ञ हैं। बसव ने अनुभव किया कि प्रचलित धारणा कि वेद कर्मकांड का बखान करते हैं गलत है जबकि वहां भी ईश्वर और भक्ति की ही प्रतिष्ठा है। परम्परागत शिक्षा से उसके विद्वान् मस्तिष्क को संतोष तो मिला किन्तु उसके भीतर के भक्त को तसल्ली न हुई।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया बसव ने पाया कि तमाम ब्राह्मण-अनुष्ठान करना संभव नहीं है। वह काफी सचेत था कि उच्चवर्ण के लोग छोटी जाति

वालों से दुर्व्यवहार करते हैं। उसने इस अन्याय का विरोध करना शुरू किया। अपने उपनयन के समय वह अपने माता-पिता से लड़ चुका था। झगड़े चलते रहे और मतभेद क्रमशः अलंघ्य होते चले गये। उसके पिता के लिए यह कटु अनुभव रहा होगा, इससे न केवल उसकी पितृत्व वाली प्रभुता पर चोट होती थी बल्कि ब्राह्मण होने का अभिमान भी आहत होता था। इसके विपरीत, लगता है कि बसव ने पिता की भावना को लेकर ज्यादा चिंता नहीं की। वह सभी तरह के भावी परिणामों का मुकाबला करने के लिए तैयार था।

इससे पहले कि दो टूक संघर्ष शक्ल लेता, बसव के माता-पिता चल बसे। संभवतः मृत्युवेला में उन्हें यह दुःख साल रहा हो कि उनका पुत्र पूरी तरह भटक चुका है तथा सफल जीवन से वंचित हो गया है। बसव तब षोडशवर्षीय किशोर था और उसके बांधवों में एकमात्र उसकी दादी ही ऐसी थी जिसको उससे स्नेह और सहानुभूति शेष थी। जब माता-पिता का साया उठ चुका तो समाज उसके प्रति कठोरतर हो गया। उसने खुलकर सामने आने का दृढ़ और अंतिम निश्चय किया। शरीर पर यज्ञोपवीत की 'कर्मवल्लरी' की जकड़ से वह परेशान था। उसने इसके टुकड़े कर फेंक दिए। यह उसके ब्राह्मणत्व और समाज मे विच्छेद का प्रतीक बना।

रूढ़िवादी हल्कों में बहुत शोर हुआ होगा और कुछ समय के लिए बसव ने सभी गालियों और धमकियों का डटकर मुकाबला भी किया होगा। किंतु जब स्थिति असह्य हो गयी तो बसव अपनी बड़ी बहन अक्कनगम्मा के साथ अपने नगर को छोड़कर कुदालसंगम या कप्पडीसंगम आ गया हालांकि नगर के शैवों ने उसकी सहायता के लिए पहलकदमी भी की।

कुदालसंगम बीजापुर शहर का एक छोटा गांव है। कुदाल और संगम दोनों का ही अर्थ है नदियों का मिलनस्थल। यहां एक बड़ा ही रमणीक स्थान है जहां मालयमा कृष्णा में मिल जाती है। संगम के निकट ही मंदिर है और अधिष्ठित देव को संगमेश्वर कहा जाता है। इस जगह को कप्पडी संगम भी कहा जाता था। कप्पडी संस्कृत के कर्पटी का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है चिथड़े पहनने वाला सन्यासी। यह उस समय एक पवित्र स्थान था जहां अक्सर शैव सन्यासी आते थे और यहां का मंदिर एक प्रसिद्ध तीर्थ था। बसव ने कुदालसंगम का चयन इसलिए नहीं किया कि यहा उसके आत्मीय रहते थे बल्कि इसलिए कि वह कुदालसंगम के देवता संगमेश्वर की मन ही मन भक्ति करता था। जैसे ही उसने मंदिर में प्रवेश किया, उसकी दबी हुई भावनाएं शब्दों में फूट निकली—उसने संगमेश्वर को अपना पिता, माता और सर्वस्व कहकर पुकारा। वह अपने तमाम सांसारिक रिश्तों को विसर्जित कर वहां ईश्वर को आसीन करने के लिए प्रस्तुत

था। उसका अब तक का जीवन तूफान में फंसे जहाज की तरह था किंतु अब किनारा मिल गया था। बसव ने कुदालसंगम में रहना तय किया।

एक स्थानिक (अर्थात् देवस्थान का अधिकारी) ईशान्य गुरू उस मंदिर का अध्यक्ष था। नाम से अनुमान होता है कि वह लाकुलीश-पाशुपत शैवसम्प्रदाय से संबद्ध था। वह भिक्षु था और मंदिर के अहाते में ही रहता था। उसने बसव की ईश्वर के प्रति गहरी आसक्ति को जाना। संभवतः वह पहला व्यक्ति था जिसने बसव की महानता को समझा। उसने यह भी देखा कि बसव ने अपनी आयु के अनुपात में बहुत दुख उठाया है। उसने बसव को सांत्वना दी और कहा कि वह मंदिर में रह सकता है। उसने बसव को ताजा पानी और पूजा के फूल लाने का दायित्व दिया जिसे बसव ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उसकी बड़ी बहन के बारे में हमें ज्ञात नहीं है। शायद वह कुदालसंगम गांव में किसी दयालु परिवार में रहने लगी।

बसव प्रातः जल्दी उठकर ताजे फूल और जल लाता। उसके लिए यह प्रीतिकर श्रम था। मंदिर उसका सब कुछ बन गया। वहां कोई नियम-मर्यादा नहीं थी। वह ईश्वर का दीवाना हो गया तथा उसकी पूजा का तरीका शास्त्रविधि के अनुरूप नहीं था। वह नाचता, गाता और ताली बजाता था, वह ईश्वर से ऐसे बात करता था जैसे कि किसी मित्र से कह रहा हो, वह उसे बच्चे के समान सहलाता था, तथा पूजोपहार लाने में देर हो जाए तो क्षमा-अभ्यर्थना करता था। संक्षेप में ईश्वर के अलावा उसकी और कोई दिलचस्पी नहीं थी। मंदिर के अधिकारी और जनता उसकी भक्ति के प्रशंसक हो गए। बसव ने उन्हें भक्ति-पद सिखाए। पूरे अंचल में इस ईश्वर के मतवाले की ख्याति फैल गई। वर्ष में एक बार कपिलषष्ठी उत्सव के मौके आस पास के गांवों से लोग कुदाल संगम में उमड़ पड़ते थे। वे बसव को दिव्यानुभूति से मत्त होकर घंटों नाचते और गाते देखते थे। वह उनके साथ शिव और उसके परिवार की बातें करता था। बसव की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। बाद में चलकर उसने जो धार्मिक और सामाजिक नेतृत्व किया उसकी नींव इस तरह यहीं पड़ी।

कुदालसंगम पर उसने आध्यात्मिक साधना की। इस अनुकूल वातावरण में उसका व्यक्तित्व निखरा। शायद यही उसने आत्मविश्वास विकसित किया और अपने आगामी जीवन के सपने बुने। उसका तात्कालिक आदर्श तो यही था कि वहीं बस कर संगमेश्वर की सेवा में जीवन अर्पित कर दिया जाये।

कहा जाता है कि शैव धर्म के नये सम्प्रदाय वीरशैव तथा नयी सामाजिक दृष्टि का उद्भावक बसव ही था। वीरशैव के प्रवर्तन के विषय में अभी तक कई विवाद हैं। एक मत है कि वीरशैव का प्रारम्भ बसव ने किया और इसका

इतिहास बारहवीं शताब्दी के मध्य तक खोजा जा सकता है। दूसरा मत है कि वीरशैव धर्म बहुत प्राचीन है तथा बसव को इसके पुनरुद्धार का श्रेय जाता है। हालांकि यहां किसी मत के पक्ष या विपक्ष में कहने का अवसर नहीं है। तथापि कुछ प्रसंगानुकूल तथ्यों का उल्लेख समीचीन सिद्ध होगा। बसव-पूर्व के अनेक शिलालेख कई शैव-सम्प्रदायों की चर्चा करते हैं किन्तु किसी में भी वीरशैव अथवा इसे व्यंजित करने वाले किसी संप्रदाय का नाम नहीं है। यह अभावात्मक साक्ष्य है। वीरशैव की दार्शनिक उपपत्तियों को विवेचित करने वाले 'सिद्धांत शिखा-मणि' जैसे ग्रन्थों की प्राचीनता संदिग्ध है। बसव और उसके समकालीनों ने काश्मीरी शैव धर्म तथा तमिलनाडू से संलग्न कई भक्तों का उल्लेख किया है। बसव द्वारा प्रशंसित भक्तों में केवल देवर दस्सीमय्या ही अपवाद हैं जोकि ऐति-हासिक व्यक्ति हैं तथा ग्यारहवीं शती के मध्य में जीवित थे। उनकी कुछ कन्नड़ रचनाएं उपलब्ध हैं। उनमें मनोहारी साहित्यिक गुण हैं तथा शिव की अनन्य भक्ति के दर्शन होते हैं। किंतु यहां भी उनके संप्रदाय का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता। वीर-शैव मतवादियों में कुछ मानते हैं कि इस संप्रदाय की स्थापना और प्रचार पंच आचार्यों ने की। हालांकि उनका समय बहुत विवादास्पद है किन्तु लगता है कि इस सूची में अग्रणी रेवनसिद्ध बसव का ही वरिष्ठ समकालीन था। यह संभव है कि वह परंपरागत शैवमत के एक धड़े का प्रतिनिधित्व करता हो। बसव के पश्चात् विभिन्न शैव सम्प्रदायों में काफी मिश्रण हुआ है।

आज के वीर शैवों को मोटे रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है : रेवन-सिद्ध के अनुयायी तथा बसव के अनुयायी। दोनों में विचारधारा के लिहाज से भारी अन्तर नहीं है। दोनों धड़ों में पहले से ही एक दूसरे से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए आपस में शास्त्रार्थ होता आया है।

इस अप्रासंगिक विषय को दरकिनार करें—इस पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि बसव ने वीरशैव मत को नया रूप दिया। किंवदन्तियों के अनुसार स्वयं महेश्वर ने कुदालसंगम में उसे वीरशैव बनाया तथा किसी ने उसे नये मत में दीक्षित नहीं किया। इससे यह भी व्यंजित होता है कि उसने नया धर्म नहीं चलाया बल्कि पुराने शैव धर्म का क्रान्तिकारी रूपान्तरण किया। वस्तुतः वह नये धर्म, नये आंदोलन का प्रवर्तक था।

4. समाज में वापसी

बसव ने सोचा था कि वह एकांतवास करता हुआ कुदालसंगम में सन्यासी का जीवन बिता सकता है। किन्तु आयुवृद्धि के साथ वह परिपक्व युवा व्यक्ति बना और उसने चारों ओर वही भ्रष्ट समाज देखा–कुदालसंगम हर मायने में वही था जो बागेवाडी थी। उसका स्वभाव ही ऐसा था कि इसके साथ वह कोई मेल नहीं बैठा पाता था। वह अपने असन्तोष को दो बार अभिव्यक्त भी कर चुका था : पहली बार तब जबकि वह आठ बरस का था और दूसरी बार जबकि उसकी आयु सोलह बरस की थी तथा अब उसकी अज्ञान और शोषण से लड़ने की सह-जात प्रवृत्ति और नई व्यवस्था लाने की इच्छा प्रबल होने लगी। इसका अभि-प्राय यह नहीं कि वह कुदालसंगम में नाखुश था। इसके विपरीत, उसे इसका पूरा विश्वास था कि वह व्यक्तिगत स्तर पर महान आध्यात्मिक ऊंचाईयां पा सकता है तथा स्वयं मोक्षलाभ भी कर सकता है। मंदिर के अधिकारियों का भी उसके प्रति सम्मानभाव था। यह सब पर्याप्त आकर्षणमय था। किंतु अंतःकरण की आवाज उसे व्यापक संसार में जाकर मानवता के लिए कुछ करने को प्रेरित करने लगी। इसके अलावा उसे यह भान भी था कि वह मंदिर के संरक्षण में है अतएव परनिर्भर है। वह नौकरी करके जीविकार्जन का सोचने लगा। उसने अनुभव किया कि इस तरह वह अपने सपनों का समाज बनाने में समर्थ समर्पित लोगों का दल खड़ा कर सकता है।

तत्कालीन राजनीतिक हल्कों में बिज्जल नरेश की सर्वाधिक चर्चा थी। बिज्जल की राजधानी थी मंगलवेडे। बसव ने वहां जाना तय किया। किन्तु उसके लिए कुदालसंगम छोड़ पाना अतीव दुष्कर था चूंकि यह कुदालसंगमेश्वर की भूमि थी जिसके प्रति बसव की गम्भीर आसक्ति थी। बसव निर्णय तभी कर पाया जब संगमेश्वर ने स्वयं उसके स्वप्न में आकर अनेक बार उसे आश्वस्त किया कि वह सदा बसव के साथ हैं और उसकी सहायता करते रहेंगे। बसव गणित में निष्णात था अतः उसने बिज्जल नरेश के यहां लेखाधिकारी बनने की सोची।

यहां हमें कुछ हटकर जानना पड़ेगा कि कल्याण चालुक्य का सामन्त

बिज्जल कैसे राजनीतिक रूप से इतना महत्त्वपूर्ण हो गया। बसव और बिज्जल के जीवन परस्पर इतने गुंथे हुए हैं कि एक का दूसरे पर सुस्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

बादामी के चालुक्यों (ई० सन् 500—750 तक) के पश्चात् महान् राष्ट्रकूटों का आविर्भाव हुआ जिनका तेज दक्खन से लेकर कर्णाटक तक व्याप्त था। राष्ट्रकूट वंश का अंतिम और संभवतः सबसे महान् नरेश कृष्ण तृतीय हुआ। उसका अधीनस्थ सामंत था आहवमल्ल तैल अथवा तैल द्वितीय, जिसके शासित प्रदेश का नाम था तरडावाडी (बीजापुर जिले के वर्तमान इन्दी, सिंदगी और बागेवाडी ताल्लुक)। तैल बादामी के चालुक्यों के परिवार से था और वह बहुत महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसको अपने पूर्वजों पर उचित ही गर्व था क्योंकि उन्होंने कर्णाटक के इतिहास में जीवन्त भूमिका निभायी थी। वह स्वतन्त्र होने के अवसर की तलाश में था और वह कृष्ण तृतीय के छोटे भाई खोट्टिग ने जुटा भी दिया। खोट्टिग और उसका उत्तराधिकारी कर्क दोनों ही कमजोर शासक थे। तैल ने 973 ई० में कर्क को पराजित कर अपने को सर्वप्रभुता संपन्न राजा घोषित कर दिया। इस तरह दो सौ साल से कुछ अधिक के अन्तराल के बाद बादामी के चालुक्यों का आधिपत्य नये सिरे से कायम हुआ।

तैल का राज्य केन्द्र था मान्यखेट (गुलबर्गा जिले का वर्तमान मालखेड)। उसने अपने साम्राज्य को इतना सुदृढ़ किया कि वह दो सौ पचास साल और चला। वह तथा उसके उत्तराधिकारी विद्या के महान् आश्रयदाता थे। उदाहरण के लिए तैल और उसके उत्तराधिकारी इरिवाबेदंग सत्याश्रय के संरक्षण में कन्नड के महानतम कवियों में से एक रन्न ने अपने गौरव ग्रन्थों की रचना की। 1048 ई० प० में सोमेश्वर प्रथम ने मान्यखेट से अपनी राजधानी कल्याण (बीदर जिला) में बदल ली। चालुक्य साम्राज्य के अंतिम दिनों तक कल्याण ही राजधानी रही। इसलिए चालुक्यों का नया अभिधान प्रचलित हुआ--कल्याण के चालुक्य।

चालुक्य साम्राज्य के सूर्य का मध्याह्न विक्रमादित्य षष्ठ (1076 ई० प०) के काल में था। तैल से लेकर विक्रमादित्य तक इस साम्राज्य ने क्रमिक और नियमबद्ध प्रगति की : साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार हुआ, अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ तथा विद्वानों को सम्मानित किया गया। मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर के उद्गार हैं कि कल्याण जैसी नगरी न कभी भूतकाल में रही है और न ही भविष्य में हो पायगी।

हालांकि विक्रमादित्य की परवर्ती राजपरम्परा की कहानी अफसोसनाक ही

है क्योंकि वे दुर्बल, कौशलहीन, उत्साहरहित और कल्पनाशून्य साबित हुए। बारहवीं शताब्दी के मध्य में तैल तृतीय को बिज्जल ने सिंहासनच्युत कर दिया और संभवतः उसकी हत्या भी कर दी। बिज्जल के तख्ता पलट की एक दूसरी मनोरंजक किंतु दुःखद कहानी है। यह वही पुराना किस्सा है कि कैसे कोई शक्तिशाली वंश अपना महत्त्व खो बैठता है और फिर मौका पाते ही दुबारा हावी हो जाता है।

बिज्जल का संबंध कलचुरियों से था। कलचुरी शुरू में मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड के वासी थे। वे शिव के परम भक्त थे इसलिए उनके अभिलेखों में उनके लिए परममाहेश्वर अभिधान का प्रयोग होता था। उनके राजकीय चिह्न में शिववाहन नन्दी का चित्र अंकित रहता था। हालांकि यह शक्तिशाली वंश था किन्तु इसे खदेड़ दिया गया तथा इसके वंशजों को भिन्न भिन्न भागों में बसने को मजबूर होना पड़ा। इस वंश की एक शाखा दक्षिण भारत में चालुक्यों की सामन्त होकर मंगलीवेड (महाराष्ट्र के शोलापुर जिले में आधुनिक मंगलवेढे) में आ बसी। ये ही कर्णाटक के कलचुरी कहलाए।

कलचुरियों के इतिहास में उचित (925 ई० पश्चात्) पहला व्यक्ति है। उचित और जोगम (1110 ई० पश्चात्) के बीच के कलचुरी नरेशों की बाबत उनके नामों के अतिरिक्त हम विशेष कुछ नहीं जानते। वस्तुतः जोगम के राज्यकाल में ही देश में इस वंश के अस्तित्व का प्रभावपूर्ण अहसास होना शुरू हुआ। कल्याण के चालुक्यों के सामंत की हैसियत से उसने अनेक संग्राम किए और उनके लिए कई विजय पताकायें फहरायीं। प्रसिद्ध विक्रमादित्य षष्ठ ने जोगम की कन्या से विवाह किया। यह चालुक्यों के साम्राज्य में जोगम के महत्त्व का सूचक है। हम पहले देख ही चुके है कि चालुक्यों में विक्रमादित्य सबसे प्रतापी सम्राट था। पेरमदि (1118-40 ई० प०) अपने पिता जोगम का उत्तराधिकारी बना। उसका विवाह विक्रमादित्य की अन्य पत्नी चंदल देवी से उत्पन्न लड़की से हुआ। अतः पेरमदि का चालुक्यों से करीबी रिश्ता था—वह विक्रमादित्य का दामाद था। दूसरी ओर, वह विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी सोमेश्वर का मामा था। सोमेश्वर एक दुर्बल शासक था। यह मानना सकारण है कि पेरमदि ने इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास किया और वह स्वतन्त्र हो गया। पेरमदि का पुत्र बिज्जल था जो सन् 1140 में अपने पिता की गद्दी पर बैठा। तभी सोमेश्वर की गद्दी पर (नया सम्राट) जगदेकमल्ल आसीन हुआ। जगदेकमल्ल और बिज्जल निकट के संबंधी थे तथा समान आयु के थे। जगदेकमल्ल का जल्दी देहांत हो गया तथा उसका छोटा भाई तैल (III) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह बहुत ही कमजोर शासक था तथा उसमें प्रशासकीय गुणों

का अभाव था। बिज्जल अपने पिता के सपनों के साथ जवान हुआ था। वह आजाद होना तथा यथासंभव पूर्वजो के यश को पुनः प्राप्त करना चाहता था। सिंहासन पर दुर्बल तैल को देख उसकी महत्त्वाकांक्षाएं मचलने लगीं। बिज्जल मे वीरता भी थी, कौशल भी तथा उसे विश्वास था कि स्वयं उपस्थित इस स्वर्णिम अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। उसने कई सामन्तों को विश्वास में लेकर तख्ता पलटने का षड्यन्त्र रचा। इन सामंतों में सबसे महत्त्व-पूर्ण बनवासी क्षेत्र का शासक कसपय्या था। तैल को बिज्जल पर पूरा विश्वास था तथा राज्य संचालन के लिए बिज्जल पर निर्भर था। बिज्जल ने इसका इस्तेमाल किया। उसने अधीनता के सूचक 'महामंडलेश्वर' आदि पद छोड़ दिए तथा सम्राट के लिए उचित 'भुजबल चक्रवर्ती' और 'त्रिभुवनमल्ल' आदि पद ग्रहण किए। उसने अपनी संज्ञा 'महाराजाधिराज' अर्थात् राजाओं के ऊपर महाराज रखी। स्वायत्त शासन के लिए उसके प्रयास 1156 ई० में आरंभ हुए। उसने तैल को गद्दी से उखाड़ फैंका तथा औपचारिक रूप से अपने को सम्राट घोषित कर दिया। तैल ने बिज्जल का प्रतिरोध किया किन्तु हम मान सकते है कि आसानी से उसे परास्त कर दिया गया तथा बाद में उसका वध भी कर दिया गया।

अब हम बसव के कथासूत्र की ओर लौटें। पिछले अध्यायों में हमने देखा कि कुदालसंगम छोड़कर गणक (लेखाकार) की नौकरी की तलाश में वह मंगलीवेडा आया। तब तक बिज्जल ने तख्ता पलट नही किया था—वह चालुक्यों के तहत मंगलीवेडा को केन्द्र बना कर शासन करने वाला सामन्त भर था। इसके बाद की कहानी कि कैसे बसव ने नौकरी पायी—हरिहर की रचना से उपलब्ध विवरण पर आधारित है। बसव सीधे राजकीय खजाने पहुंचा और खड़ा होकर देखने लगा कि कैसे अधिकारी काम करते है। तभी सिद्ध दंडा-धिकारी नामक कोष प्रमुख कार्यालय पहुंचा और उसने हिसाब किताब देखने की इच्छा जाहिर की। लेखपालों ने गणित की ऐसी भूल कर रखी थी जिससे कोष प्रमुख को पचास लाख का घाटा हो जाता। बसव तो यूं ही देख रहा था। मगर उसने झटपट वह गलती पकड़ ली। इसे सिद्धदंडनाथ को बहुत खुशी हुई और वह तुरंत बसव को राजा के पास ले गया तथा गणक अर्थात् लेखपाल के तौर पर नियुक्ति करवा दी। तहकीकात करने से सिद्धदंडनाथ को पता चला कि बसव उसका दूर का संबंधी है। उसने बसव को अपने ही साथ रहने की प्रार्थना की।

यह संभव है कि घटनाक्रम ऊपर के विवरण के अनुसार न घटा हो। किंतु इस आख्यान से हमें मोटे तौर पर यह तो पता चलता ही है कि कैसे बिज्जल

के अधीन बसव नौकरी पाने में समर्थ हुआ। हम इस संभावना से भी इंकार नहीं कर सकते कि सिद्धदंडनाथ से अपने संबंध के कारण बसव को मंगलीवेडा जाने की प्रेरणा मिली हो। हमारी दृष्टि में कई बातों का घटना आकस्मिक है किंतु बसव इन्हें ईश्वरीय कृपा मानता है।

राज्य प्रशासन में गणक (अथवा गणितवित्) महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता था। गणक के लिए दो गुणों का होना अपेक्षित था : कुशाग्रबुद्धि और ईमानदारी। बारहवीं शती के विश्वकोष मानसोल्लास का यही मानना है। बसव में आदर्श गणक के सभी गुण मौजूद थे। बिज्जल और सिद्धदंडनाथ उसके काम से प्रसन्न थे। थोड़ी ही अवधि में उन्होंने उसे गणक प्रमुख बना दिया।

अब बसव प्रचुर सम्पत्ति का मालिक तथा बड़ा आदमी हो गया। वह सोचता था कि कब वह इसे गरीबों तथा ईशभक्तों में बांट सकेगा। इसी बीच कोषपाल का देहांत हो गया तथा बिज्जल ने प्रसन्नतापूर्वक उसकी जगह बसव की नियुक्ति कर दी। इसके पश्चात् उसे बसवदंडनायक कहकर पुकारा जाने लगा। दंडनायक पद सूचना देता है कि वह बहुत बड़ा स्थान था।

बसव अभी युवा था। उसने पद, प्रभुत्व और कीर्ति अर्जित कर ली थी। अपने हितैषी सिद्धदंडनाथ के देहांत होने के थोड़े ही बाद, बसव ने उसकी दोनों कन्याओं गंगादेवी और मायादेवी (अपर नाम नीललोचने) से शादी कर ली। खैर यह जानना भी आवश्यक है कि किशोर वय में उसका सपना सन्यासी होने का था। किंतु आयुक्रम से विचारपक्वता आयी। बसव ने अपने एक बाद के वचन में गृहस्थ जीवन के पक्ष में तर्क दिया है तथा यह भी कहा है कि कामवासना के दमन से अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा होती है।

बसव का दाम्पत्य जीवन अतीव सुखद था। दोनों ही बहनें शिक्षित थीं तथा वे बसव को पूरी तरह से समझती थीं और व्यस्त जीवन में पूरा सहयोग करती थीं। अक्कनगम्मा और ये बहनें उनकी पूरी देखभाल करती थीं।

धन और प्रभुत्व स्वतः ही बसव को प्राप्त हुए किन्तु बसव में कोई पतन नहीं आया। इसके विपरीत बसव में विनम्रता ही बढ़ी। उसके दिल में गरीबों के लिए प्यार और धनिकों के लिए घृणा थी। उसने अपने घर के दरवाजे खोल दिए तथा अपने धर्म के लिए अपना आखिरी पाई पैसा तक खर्च कर दिया।

बसव वीरशैव धर्म का आचरण और प्रचार करता था। वीर का सामान्य अर्थ है बहादुर। वीरशैवमत का आग्रह है कि इसको मानने वाले अनन्यभाव से एक ईश्वर अर्थात् शिव की भक्ति करें। इसका यह अर्थ नहीं कि वे अन्य देवताओं का अनादर करें। मगर उनकी दृष्टि में शिव सर्वोपरि है। वीर शब्द उस उत्साह का द्योतक है जिससे इस नये आंदोलन का प्रवर्तन हुआ। इस धर्म को लिंगायत

या लिंगवंत नाम से भी पुकारा जाता है। लिंगायत वह है जो अपने शरीरपर लिंग धारण करे। उनको मंदिर जाकर पूजा करने की मनाही है। उनकी दृष्टि में मंदिर संस्थाबद्धता और रूढ़िबद्धता के प्रतिनिधि हैं। स्पष्ट ही, उनका विचार था कि केवल धनी ही मंदिर बनवा सकते हैं और गरीब तो कभी नहीं। उनकी दृष्टि में मंदिर में पूजा, शायद यह भी संकेत करती थी कि ईश्वर उनसे दूर कहीं रहता है। यहां दुहरा दें कि बसव ने पहली बार उन्हें उपासना का सही स्वरूप समझाया। इसलिए वीरशैवों के लिए अनिवार्य है कि बेर के आकार का छोटा चपटे तले वाला लिंग अपने शरीर पर धारण करें। मंदिर के स्थावर (अर्थात् स्थिर) लिंग के विपरीत इसे इष्ट (अर्थात् प्रिय) लिंग कहा जाता है। इसे वे एक कपड़े में रखकर गले में बांध सकते हैं अथवा एक छोटी ताबीज में रखकर गले में इस तरह लटका सकते हैं कि छाती पर टिका रहे। यह लिंग दिन में दो बार निकाल कर हथेली पर रखकर पूजा जाता है। वीरशैव से साधारणतया यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस लिंग को किसी भी समय अपने से दूर न करे। इस चर्चा से दो बातें लक्षित होती है : एक, जीवात्मा पशु है तथा ईश्वर पशुपति है। पशुओं को सदा अपने स्वामी के संरक्षण में रहना चाहिए। दूसरे, जीवात्मा तत्त्वत: परमात्मा ही है तथा क्रमिक और नियमपूर्ण साधना द्वारा वह ईश्वर तक पहुंच सकता है और ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है।

वीरशैवमत की अपने अनुयायियों से अपेक्षा है कि वे गुरू, लिंग और जंगम के प्रति श्रद्धा रखें तथा प्रत्येक को उचित सम्मान दें। गुरू वह शिक्षक है जो व्यक्ति को वीरशैवमत में दीक्षित करता है तथा लिंग प्रदान करता है। दीक्षित व्यक्ति को सदा अपने शरीर पर लिंग धारण करने को कहा जाता है। जंगम का अर्थ है गतिशील। इसलिए सन्त को जंगम कहते है। जंगम प्रत्यक्ष परमात्मा है तथा वह एक स्थान से दूसरे स्थान उपदेश देता हुआ घूमता है। कई वार उसे ईश्वर से बढ़कर माना जाता है और इसलिए वह अधिक सम्मान का पात्र है।

वीरशैवमत में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में से भक्ति का स्थान सर्वोपरि है। ईश्वर की स्वरूपोलब्धि में ज्ञान और वैराग्य भक्ति के सहायक भर हैं।

यह व्याख्या कथासूत्र से भटकाव लग सकती है किंतु बसव की धार्मिक दिनचर्या का इससे खुलासा होता है।

बसव की पवित्रता, विनम्रता और महान् भक्ति की कीर्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी। माहेश्वरों (शिवभक्त), जंगमों और साधारण उपसकों का उसके घर जमघट लगा रहता था। कई तो बहुत दूर से आते थे। उसका घर एक प्रकार की धर्मशाला ही थी और सही ही उसको महामने अर्थात् बड़ा घर कहकर पुकारा जाता था। सभी का प्रतिदिन किसी भी समय, उसके घर में स्वागत

रहता था। मेहमानों को इष्टलिंग की पूजा के लिए सुविधाएं उपस्थित की जाती थीं तथा उन्हें अच्छा भोजन कराया जाता था। वे सब बसव की भक्ति और ईमानदारी की भावना से प्रसन्न थे। वे उसकी प्रशंसा करते और उन्होंने यह घोषित कर दिया कि पृथ्वी पर उस जैसा शरण (शब्दार्थ-भक्त) नहीं है। बसव को अपनी चापलूसी सह्य नहीं थी। वह उनसे प्रार्थना करता कि वे उसकी प्रशंसा न करें जिससे उसमें घमंड आ जाये।

प्रशंसा निरंतर मेरी प्रशंसा
चाहे कितनी अनुप्रेरित हो
छेद देती है मुझे सुनहरी भालों से
यह श्लाघा मुझे घेर कसती है
ईश तुम्हारा अनुराग ही हाय
सुतीक्ष्ण खड्ग की नाई काटता है
मैं आहत हूं, आह
और सह नहीं सकता
ओ, भगवान कुदालसंगम
मुझे चाहते हो अगर तो आओ
कृपानिधान रोक दो यह प्रशंसा*

बसव उन लोगों के साथ शिव के नामों का जाप करते हुए और गाते हुए रातें बिताया करता था। बसव को समानधर्मा व्यक्तियों की संगति में प्रसन्नता बल्कि दिव्यानुभूति होती थी। बसव ने वर्ष के सभी दिनों को शिवरात्री के रूप में मनाने का व्रत लिया।

बसव ने कुछ प्रतिज्ञायें की और निभायीं भी : वह ईश्वर के भक्तों को ईश्वर के रूप में ही देखेगा; वह कभी भी भक्तों की निंदा नहीं करेगा; उसका आचरण कथनी के अनुरूप होगा; शरण जो भी मांगेंगे—वह सब कुछ देगा; वह मनुष्यों से किसी किस्म का अनुदान नहीं स्वीकार करेगा, वह दूसरों के मतों का उच्छेदन

---

* एस० एस० बसवनाल ने 1951 ई० में बसव के वचनों का शोधपूर्ण संपादन और प्रकाशन किया (बसवन्नानवर षट्स्थलादा वचनागलु प्रकाशन लिंगायत विद्याभिवृद्धि समिति, धारवाड)।मैंने सामान्यतया इसी संस्करण का सहारा लिया है। कन्नड़ के वचनों का अंग्रेजी अनुवाद एल० एम० ए० मेनेज़िस तथा एस० एम० अंगडी ने किया है और वे अब पुस्तकाकार रूप में उपलब्ध हैं (Vachanas of Basavanna, प्रकाशक जिन वचनों को इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है वे उन्हीं के अनुवाद हैं (अर्थात् मूल अंग्रेजी पुस्तक में अनुवादक)

और अपने धर्म की स्थापना करेगा। एक समय तो बसव ने यह भी प्रतिज्ञा की कि कभी वह चटाई पर भी नहीं सोयेगा। इसके पीछे यह विचार था कि शिव कभी भी उसके पास जंगम के रूप में उपस्थित हो सकते हैं।

ऊपर हमने देखा कि उसने दूसरे मतों के उच्छेदन और स्वधर्म के प्रचार की प्रतिज्ञा की थी। दूसरे पक्ष का खंडन तथा अपने पक्ष का प्रचार उस समय का आम चलन था। बसव ने अपने वचनों में दूसरे सम्प्रदायों के बुरे पहलुओं का जमकर खंडन किया है। ब्राह्मणवाद ने किसी बाहरी, उदाहरणतया अछूतों को ब्राह्मण होने की अनुमति नहीं दी। बसव ने घोषणा की कि कोई किसी भी वर्ग, बिरादरी, मत अथवा पेशे से जुड़ा हो—वीरशैव हो सकता है। एक बार वीर-शैव होने पर वह सबके बराबर है। वीरशैवमत व्यक्ति से दो ही अपेक्षाएं रखता था : उसे अपनी पुरानी आस्था छोड़कर नये धर्म में इष्टलिंग धारण कर दीक्षित होना है तथा भगवान शिव में पूरी आस्था रखनी है। वीरशैव मत में कोई जटिल कर्मकांड भी नहीं है :

वीरशैव को अपने माथे पर पवित्र राख अर्थात् भस्म लगानी होती है; उसे मांस मदिरा से परहेज करना अर्थात् पूर्ण शाकाहारी रहना होता है; सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) और अहिंसा का सतत आचरण जरूरी है, उसे आलस्य-हीन होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई धंधा अपनाकर कठोर मेहनत से अपना जीवन बसर करना चाहिए; उसे मंदिर नहीं जाना चाहिए क्योंकि स्वयं शरीर ही मंदिर है तथा जहां शिवभक्त रहते हैं वहीं तीर्थ है; यदि किसी के पास पूजा करने का समय और साधन न हो तो चिंता का विषय नहीं क्योंकि ईश्वर में उसकी आस्था महत्त्वपूर्ण है। ये जनता और विशेष रूप से निर्धन और दलित जनों के हृदय को छूने वाली बातें थी। उनको अनुभव हुआ कि उनका उद्धारक प्रकट हुआ है। हजारों की संख्या में लोगों ने बढ़कर इस धर्म को अंगीकार किया। इनमें थे—खेनीहर, बुनकर, मोची, मछुआरे, शिकारी, टोकरी बनाने वाले, नाई, व्यापारी और ब्राह्मण भी।

कप्पड़ीसंगम में बसव एक व्यक्ति भर थे, किंतु मंगलीवेडा में वह जनता के आदमी, सामाजिक कार्यकर्त्ता, एक आंदोलन के प्रवर्तक और क्रान्ति के प्रतीक बन गये। उनकी आध्यात्मिक साधना और सामाजिक गतिविधियों में लय-ताल की संगति थी।

हमें ज्ञात नहीं कि वह कब तक मंगलीवेडा में रहे। अल्लमप्रभु आदि उसके बहुतेरे साथी पहली बार उससे मंगलीवेडा में ही मिले; उनकी क्रान्ति के बीज यहीं पड़े जबकि वह पल्लवित और फलवान कल्याण में हुई।

जब वह भंडारी अर्थात् कोषपाल था तो दूरगामी प्रभाववाली कई राज-

नीतिक घटनाएं घटीं। जैसे कि हमने पहले देखा बिज्जल ने 1162 ई० में चालुक्यों को सिंहासनच्युत करके मंगलीवेडा को छोड़कर कल्याण को अपनी राजधानी बनाया। फलस्वरूप बसव भी 1162 या उससे पहले कल्याण चले गये। उनका वही पद रहा, इतना ही अंतर था कि अब वह एक साम्राज्य के भण्डारी थे।

बिज्जल द्वारा इस तख्तापलट को लेकर बसव की क्या प्रतिक्रिया थी? उत्तर सरल है कि हमें ज्ञात नहीं है। अपनी आजीविका के आरंभ में वह बिज्जल का निष्ठावान सेवक था। यह मानना ही सर्वोत्तम है कि वह अपनी गति से चलता रहा और इसके प्रति निर्विकार बना रहा। राजधानी के बदलाव ने बसव और उनकी गतिविधियों पर भरपूर प्रभाव डाला। अब वह ज्यादा बड़े भंडार की देखभाल करने वाले ज्यादा बड़े और अधिक समर्थ अधिकारी थे। मंगलीवेडा एक छोटा कस्बा था जबकि कल्याण एक बड़ा नगर था जिसमें जीवन का स्पंदन था। इसने बसव द्वारा मंगलीवेडा में शुरू की गई सामाजिक क्रान्ति को वेग प्रदान किया।

5. कल्याण

चालुक्यों की राजधानी कल्याण आज बीदर जिले का एक छोटा कस्बा है और बसव के कारण इसका नाम है बसव कल्याण। इस शहर का वीरशैवों और कन्नड़ साहित्य के अध्येताओं पर एक जादुई असर है। यहां ऐसी पुरातात्त्विक सामग्री की भरमार है जो बारहवीं शती के वीरशैव आंदोलन का स्मरण कराती है। यहां वे गुफाएं और मंदिर है जिनके बारे में मान्यता है कि इनमें बसव, अक्कनगम्मा, अल्लंप्रभु तथा अन्य संतों ने तपश्चर्या की। आगन्तुकों को वे जगहें दिखाई जाती हैं जहां मान्यता के अनुसार बसव ने गरीबों को दान दिया तथा अपने सहयोगियों के साथ विचार विमर्श किया। इनके कारण कल्याण एक आकर्षक स्थान तथा बसव के अनुयायियों के लिए तीर्थ हो गया।

हम देख चुके हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह राजनीतिक, धार्मिक और दूसरी गतिविधियों के कारण सजीव और बृहत् नगर था। हम देख चुके हैं कि कैसे चकित होकर विज्ञानेश्वर ने इसका वर्णन किया है। एक दर्जन से ऊपर अभिलेख इस नगर के व्यापार और विस्तार की सूचना देते हैं। यहां भिन्न देवी-देवताओं के अनेक मंदिर थे जिनमें से एक पर कालमुखों का नियन्त्रण था। यहां शैव, वैष्णव और जैनों का निवास था। हम अनुमान कर सकते हैं कि यहां बौद्ध भी रहते थे बेशक उनकी संख्या कम थी। यह धार्मिक और शैक्षिक केन्द्र था—यहां ब्राह्मण, 'गोरव', कालमुख सन्यासी समाज में सम्मान पाते थे। इस महान नगर में व्यापार-वाणिज्य खूब विकसित था। अभिलेखों में हम वड्ड व्यवहारियों (बड़े व्यापारियों) तथा उभयदेशियों (दो देशों से संबंध रखने वाले व्यापारियों) के बारे में पढ़ते हैं। इनमें पहली प्रकार के वे व्यापारी हैं जो एक देश या स्थान से मर्यादित थे तथा दूसरी किस्म के वे व्यापारी हैं, जिनका व्यापार एक राज्य में ही सीमित न था। भिन्न जातियों के अलग अलग मुहल्ले थे। एक अभिलेख से स्पष्ट होता है कि दर्जियों की एक गली (सिंपिग गेरी) थी। रायनारायणपुर नामक कल्याण नगर का ही विस्तार था जहां ब्राह्मण बसते थे। एक अभिलेख में टकसाल का जिक्र है। कुल मिलाकर, यह एक बड़ा शहर था जिसमें जीवन ठाठें मारता था।

पिछले अध्याय में हमने देखा है कि जब बिज्जल ने औपचारिक तौर पर अपने को सम्राट घोषित किया तो 1162 ई० में बसव कल्याण आये। बिज्जल एक वीर योद्धा तथा कुशल और समर्थ प्रशासक था। उसने पूर्ववर्ती शासकों के सभी पद धारण किये। बिज्जल काल के अभिलेखों से उसकी शूरवीरता का परिचय मिलता है। एक अभिलेख, बेशक अत्युक्तिपूर्वक ही यह कहता है कि बिज्जल को कभी हाथी या घोड़े खरीदने नहीं पड़े चूंकि वह समरभूमि में ही पर्याप्त पकड़ लेता था। अभिलेख यह भी बताते हैं कि वह धर्मभीरू था तथा उसने कालमुख सम्प्रदाय के शैव सन्यासियों को उदारतापूर्वक दान दिया। दूरदर्शी प्रशासक होने के नाते वह सभी धर्मों के प्रति समभाव रखता था।

बसव भण्डारी पद पर बने रहे। भंडारी के दो काम थे : राज्य के आय-व्यय की देखभाल करना और लेखा-जोखा रखना। निस्संदेह यह जिम्मेदारी भरा मुश्किल काम था।

बसव बिज्जल के प्रति बहुत निष्ठावान रहे होंगे—आरंभिक काल में तो निश्चय ही। हम देख चुके हैं कि बिज्जल गलत तरीकों से सम्राट बना। स्वाभाविक था कि वह सन्देहशील होता और यह अनुमान भी सही है कि वह ईमानदार और वफादार अधिकारियों को अपने आसपास रखना चाहता रहा होगा। यदि उसे बसव की ईमानदारी पर संदेह रहा होता तो उसे उसके पद से हटाकर अधिक विश्वसनीय व्यक्ति को रख लेता।

अधीनस्थ अधिकारी के नाते, बसव निश्चय ही बिज्जल के प्रति वफादार थे। किंतु धार्मिक स्तर पर बिज्जल तो भावी[1] अर्थात् वीरशैव था। बसव समाज और धर्म के सुधारक थे—उनकी प्रबल इच्छा थी कि अधिकांश लोग आंदोलन के साथ आयें और उसे मजबूत बनायें। उसके मन में 'भावी' वर्ग की कोई अच्छी जगह न थी, यह उसकी कई रचनाओं से प्रामाणित होता है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि वह अपने वरिष्ठ के अधीन एक वफादार अधिकारी था किन्तु उसके प्रति बसव के मन में आदर की भावना नहीं थी। बसव इस द्वन्द्व का शिकार रहा है और उसने अपनी रचनाओं में स्पष्ट अभिव्यक्ति भी दी है। एक दिन उसके अपने आदमियों ने बसव से भावी की नौकरी करने पर सवाल

---

1 इसी जन्म में मुक्ति पाने वाले 'भक्त' के विपरीत भावी का शब्दार्थ है—भावी जन्म पाने वाला। बारहवीं शती के कई वीरशैव नेताओं ने पूरी मानव जाति को दो भागों में विभाजित किया—भक्त वर्ग और भावी वर्ग। बसव और दूसरों की राय में वीरशैव मत सभी अच्छाइयों का समुच्चय है जबकि 'भावी' इन्सान की सभी बुराइयों का प्रतीक है।

किया और उसकी आलोचना की। बसव ने उन आलोचकों को निम्न वचन में जवाब दिया—

प्रात: उठ आंख मलते, अगर
    मैं उदर और घर का सोचूं,
पत्नी बच्चों का सोचूं तो
    मेरा मन ही साक्षी है मेरे मन का।
धुरंधर कहते हैं 'बसवन्ना
    उन शास्त्रों का पाठ करता है, जहां
कहा गया है : जिसका उठना, बैठना,
    खाना पीना भावी के साथ है
वह अनंत समय को घोर नरक
    का भागी होगा
किंतु बिज्जल सरीखे भावी की
    गद्दी के नीचे बैठा
वह स्वयं उसकी चाकरी करता है'
    मैं उत्तर दूंगा क्योंकि मैं दे सकता हूं.......
'अतिशूद्र के घर जाकर, करूंगा
    मैं छोटे से छोटा काम
मेरा सरोकार तो तेरा दरबार है;
    किंतु अगर मैं अपने पेट का सोचूं
तो मेरा भाल जिम्मेदार है,
    ओ कुदालसंगमेश्वर।'

इस वचन से पूरी तरह स्पष्ट है कि बसव ने बिज्जल के अधीन नौकरी अपनी खातिर नहीं की अपितु अपने धर्म और समाज के लिए की। उनके पद ने उन्हें महत्वपूर्ण व्यक्ति बनाया जिससे उनके आंदोलन को लाभ मिल सकता था और मिला भी। उनका वेतन भरपूर था और परिवार छोटा था। वह मुसीबत की घड़ी के लिए कुछ बचा रखने के स्पष्ट ही विरुद्ध थे। अत: उनका सारा धन आंदोलन को समर्पित था। उनके घर में वस्तुतः सदाव्रत ही खुला रहता था।

शुरू में बसव और उनके मालिक के रिश्ते अच्छे थे। उनके सामाजिक आंदोलन ने वेग पकड़ा और बहुत लोकप्रिय हो गया। उनकी कुछ शिक्षाएं वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध थीं जो स्पष्ट रूप से परम्परागत धर्म के प्रति विद्रोह था। लोगों ने वीरशैव धर्म को अपनाया। व्यापक स्तर पर नव दीक्षितों को सिखाया जाता था कि अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत रहें अपने को किसी से हीन न मानें।

हम मचाया नामक एक धोबी और शिवांगीमय्या नामक अछूत के बारे में पढ़ते हैं जो कि उच्च वर्ण के लोगों के प्रति अपेक्षित सम्मान दिखाने की परवाह न करते हुए नगर में घूमते थे। मचाया ने ऊपर के वर्ण के लोगों के कपड़े धोने से इंकार कर दिया। शिवांगीमय्या ने अपने आगमन को घोषित करने की प्रथा छोड़ दी। रूढ़िवादियों ने समझा कि यह बसव और उसके उकसाने का नतीजा है। इस आंदोलन से दूसरे धर्मों को गंभीर खतरा पैदा हो गया। यह सच है कि बसव के बहुत अनुयायी हो गये थे। मगर कई शत्रु भी बन गये थे। उनमें कई प्रभावशाली शैव और वैष्णव, ब्राह्मण और जैन थे तथा कई महत्वपूर्ण अधिकारी भी थे। बसव पुराण में इन अधिकारियों की नाम सूची दी गई है। यह जानना दिलचस्प है कि इनमें कइयों की चर्चा उन अभिलेखों में भी हुई है जहां उन्हें प्रशासन कार्य में बिज्जल के प्रमुख सहयोगी के रूप में पेश किया गया है। उदाहरण के तौर पर कसपय्या अथवा कसवीमन्त्री 1163 ई० में बनवासी क्षेत्र का शासक था तथा बिज्जल का पक्का सहयोगी था। अभिलेखों में करिया केसीमय्या का उल्लेख है। कसपय्या के अधीन बरमरसा नामक अधिकारी था। वह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था बल्कि स्वयं बिज्जल का दामाद था।

इन प्रमुख व्यक्तियों और अधिकारियों ने बिज्जल से शिकायत की कि सरकारी कोष से गबन करके बसव अपने लोगों पर इतना खर्चा करता है। हम बता सकने की स्थिति में नहीं हैं कि यह अभियोग समूचे तौर पर निराधार था या इसमें आंशिक सच्चाई थी। वीरशैव साहित्य में आयी कथाएं तो कहती हैं कि बसव ने सरकारी कोष से धन, रत्न, आभूषण और कपड़े लेकर जंगमों में वितरित कर दिये। इन कथाओं में तो बसव के इस कृत्य के लिए उसे गौरवमंडित भी किया गया है। उनके अनुसार बसव की दृढ़ धारणा थी कि कोष का पैसा ईश्वर का है और इसलिए वह ईशभक्तों के पास होना चाहिए। बिज्जल घोटाले के अभियोग की सच्चाई जानना चाहता था, इसलिए उसने जांच का आदेश दिया। जब हिसाब की जांच हुई तो वह पाई-पाई ठीक पाया गया। कहानियां यहीं नहीं रुकती बल्कि उनका दावा है कि कुदालसंगमेश्वर के कृपापूर्ण चमत्कार से प्रचुर धन प्रकट हो गया जो कि अतिरिक्त था। वह इतना ज्यादा था कि गणक उसकी गणना करने में असमर्थ थे। यदि यह सच रहता तो बिज्जल यही चाहता कि बसव ऐसे घोटाले करता रहे।

इन अभियोगों के कुछ हवाले हमें बसव के वचनों में ही प्राप्त होते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि बसव पर इस तरह के अभियोग लगे थे। बसव ने इन अभियोगों को निराधार माना और यह कहकर उनकी उपेक्षा कर दी कि बसव को बिज्जल के धन की जरूरत नहीं। किंतु एक दूसरे वचन में उसने यह

भी कहा है कि उससे उपहार न मांग कर उसे अनुभव कराया गया है कि वह निर्धन है जबकि मांगे जाने पर वह खजाना लुटाने को तैयार था। यह संभव है कि अपने धर्म प्रचार के लिए उसने राजकीय कोष के एक अंश का इस्तेमाल किया हो।

ये आरोप गम्भीर थे और बसव को जवाब देना पड़ा। इस प्रक्रिया में जो दूरी पैदा हुई वह बढ़ती गई। बसव के विरुद्ध अन्य शिकायतें भी थीं जिनमें कई तो बचकानी थीं। जैसे यह शिकायत कि जब भी बसव आदर में झुकता है तो वह राजा और सिंहासन को प्रणाम नहीं करता बल्कि अपनी अंगूठी पर उकेरे गये नन्दी के चित्र को प्रणाम करता है। सम्भव है कि बिज्जल ने इन आरोपों को गम्भीर माना हो अतः उसने अनेक मौकों पर बिज्जल की परीक्षा लेनी चाही।

बिज्जल पारम्परिक शैव मत का अनुयायी था। उसे बोध था कि उसने राजसिंहासन को अनुचित तरीके से हड़पा है—वह अपने अधिकारियों की हर गतिविधि में खतरों को सूंघता रहता था। उसके अधिकारी भी बहुत स्वामी-निष्ठ न थे। बिज्जल किसी सामाजिक परिवर्तन के लिए तैयार न था बल्कि कहना चाहिए कि उसका हित इसमें था कि परम्परागत व्यवस्था कायम रहे। वह न तो परम्परावादियों की नाराजगी झेलने को तैयार था क्योंकि वे संख्या और प्रभाव की दृष्टि से बढ़चढ़कर थे; और न ही बसव को निकाल फेंकने के लिए तैयार था। प्रथम तो इसलिए कि इसका कोई प्रमाण मौजूद नहीं था जो साबित करे कि बसव उसको स्थानच्युत करने का इरादा रखता हो, और दूसरा इसलिए कि बसव के अनुयायियों की एक विशाल संख्या थी और वह अनुपेक्षणीय शक्ति बन चुका था। किंतु समय के साथ दोनों के अन्तर्विरोध उभरे—सम्राट धमकी देता था कि नौकरी से निकाल देगा और बसव का शांत उत्तर होता कि उससे वह भयभीत होने वाला नहीं है। यदि कहानियों पर विश्वास किया जाय तो एक बार बसव को निकाल भी दिया गया किंतु बिज्जल को मुआफी मांगनी पड़ी और बसव ने दुबारा अपना कार्यभार संभाल लिया।

बसव को राजकीय काम भी करने होते तो उसकी सामाजिक जिम्मेदारियां भी थीं। इनमें उसका बहुत समय व्यय हो जाता। वह गहराई से अनुभव करते कि ईश्वर चिंतन के लिए उनके पास समय नहीं है।

सुबह से शाम मुझे फुर्सत है
खाना बनाने की कि पेट भरूं
किंतु ध्यान करूं तेरा समय नहीं—
ऐसा क्यों है, ओ लिंगपिता ?

इसलिए कि पुराकर्मों ने यह लेखा
ललाट पर मेरे
अंकित कर दिया है ।
उपले बटोर सकूं जलाने को
समय भरपूर है मेरे पास
मगर समय नहीं बनाने और खाने का
दया करो ओ कुदालसंगमेश्वर ।

मगर उन्हें तसल्ली थी कि उसके समूचे काम समाज के उत्थान की दिशा में थे ।

बसव भक्त प्रकृति के धार्मिक व्यक्ति थे । ईश्वर का साक्षात्कार उनका लक्ष्य था । किंतु आध्यात्मिकता के दबाव में उन्होंने भौतिक सांसारिक कामों का त्याग नहीं किया । उत्तेजनाओं और झंझटों वाले इसी संसार में वह रहे । उनकी पत्नी नीललोचने ने उनके बारे में कहा है कि वह सदा विपत्तियों से ही घिरे रहे हैं । इन संकटों ने उन्हें मजबूत योद्धा और अधिक विवेकवान व्यक्ति बनाया । उनके तई यह संसार वास्तविक है और सुखोपभोग भी यथार्थ है । इस जगत में अच्छा जीवन बिताने वाले को ही परलोक स्वीकार करेगा । उनका कहना था :

परमात्मा की टकसाल है यह मृत्युलोक
जो यहां अच्छे है वहां भी अच्छाई बनाएंगे
जो यहां नहीं पाते वहां भी वंचित रहते हैं,
ओ कुदालसंगमेश्वर ।

उनको संसार से बांधने वाला यही दर्शन था । इसी की बदौलत उसने नौकरी ली और एक महान् सामाजिक आंदोलन का नेता बन गया ।

6. विद्रोही और समाज सुधारक

बसव के क्रान्तिकारी विचारों की जड़ें गहरे, जनता के संचित व्यापक असंतोष में थी जो तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थितियों में उपजा था। अतः यह स्वभाविक ही था कि उसकी शिक्षा को स्वीकार कर उन पर चलने वाले अधिकांश लोग समाज के निर्धन तबकों से आये। प्रतिष्ठित सम्प्रदाय तथा सामाजिक संगठनों ने न केवल बसव का विरोध किया अपितु उसके आंदोलन को पनपने से पहले ही कुचल डालने की कोशिश की। बसव का पहला काम तो यही घोषणा थी कि कोई भी उसके धर्म में शरीक हो सकता है तथा उनमें कोई भी भेदभाव नहीं किया जायेगा। बसव का धर्म और धर्म प्रचार का तरीका, दोनों ही सरल और दिल को छूने वाले थे।

न तो तुम चोरी करोगे और न हिंसा
न झूठ बोलोगे
न किसी के प्रति क्रोध
न किसी मानव से घृणा;
न तो अपना यशोगान
न दूसरों पर आरोप।
यह तुम्हारी आंतरिक शुद्धि है;
यही तुम्हारी बाह्य शुद्धि है;
कुदाल संगम
हमारा ईश्वर, इसी से मिलता है
कैसा वह धर्म
जिसमें दया नहीं ?
दया हो—तुम्हारे मन में
—सब जीवों के प्रति;
सब धर्म-मतों का मूल
दया तो है
कुदाल सगमेश्वर को नहीं चिंता

उसकी जो दयाहीन है
जीवन कहते हो जिसे
वह फूंक से बुझ जाने वाली बाती है;
जो है धनलक्ष्मी
वह हाट की भीड़ है ।
धन—अरे जीवन नष्ट करो ।
न भूलो पर भक्ति
हमारे कुदाल संगमेश्वर की ।
देखो नहीं है अंतर
मर्त्यलोक में और देवलोक में ।
सच्च बोलना ही देवलोक है
मर्त्यलोक है झूठ का सहारा ।
अच्छे कर्म ही स्वर्ग है
नरक है पापकर्म—
और तुम हो साक्षी
कुदाल संगमेश्वर ।

बसव ने इस लोक प्रचलित धारणा को धवस्त कर दिया कि विशेषाधिकार सम्पन्न सुशिक्षित वर्गों के लिए कुछ अपरिवर्तनीय विशिष्ट कर्मकांड को धर्म कहते हैं । अच्छाई और धर्म का जीवन जीना ही धर्म का सारतत्व है। उसने बाहरी धार्मिक प्रतीकों को छोड़ा नहीं मगर गौण बना दिया । उसने अपने वचनों में अच्छे जीवन को परिभाषित किया और कहा कि ईश्वर प्राप्ति का अमोघ उपाय सदाचरण ही है । निर्धन लोगों में क्या पुलक और उत्साह जगे होंगे जब उन्होंने सुना होगा कि दूसरों की भांति वे भी धार्मिक हो सकते हैं ।) (हमें यह न मान बैठना चाहिए कि केवल गरीब ही बसव की शिक्षा से आकृष्ट हुए । बड़ी संख्या में लोग इस मत की वजह से वीरशैव बने । किन्तु दूसरे कुछ ऐसे भी थे जो बौद्धिकता या विश्वास की वजह से वीरशैव बने । इनमें आदिम देवी-देवों की पूजा करने वाले अज्ञानी जन भी थे । इनको पुरानी पूजा छोड़कर महेश्वर की शरण में आने को कहा गया । निस्संदेह इसका असर हुआ । किंतु ऐसे भी थे जिन्होंने न तो परंपरा का त्याग किया और न ही वीरशैव धर्म में आस्था बनाई । बसव और उसके सहयोगियों को ऐसी कई समस्याओं का सामना करना पड़ा । इनमें कुछ की चर्चा प्रासंगिक होगी । पति तो वीरशैव बन गया और मांस मदिरा का त्याग कर दिया; किंतु उसकी पत्नी नये मत को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी । बसव के धर्म में मांस, मदिरा और भांग

की मनाही थी। अनेक दीक्षितों के लिए अपने खाने पीने के तौर तरीकों को बदलना बड़ा ही दुष्कर था। इसलिए एकांत में वे बसव के आदेशों का उल्लंघन करते थे। बसव के भान्जे चन्नबसव ने इस ढोंग की कड़ी मर्त्सना की है। उसने सख्त हिदायत दी : मदिरा, मांस, भांग और मावी का संग छोड़ना होगा। यह जान लेने पर कि ये बुरे हैं; यदि कोई व्यक्ति इनसे चिपका रहता है तो वह बिल्ली, सूअर, कुत्ते, गधे, बत्तख से भी गया बीता जानवर है।

सभी नवदीक्षितों को बताया जाता कि वे दूसरे वीरशैवों को अपने समान समझें। उनको यह भी कहा जाता था कि वे अपने पुराने धार्मिक संपर्क छोड़ दें। मावियों के साथ रोटी-बेटी के नाते भी न बनायें। पाशुपत शैव मत भी लोगों को आकर्षित करने में वीरशैवमत से होड़ लगा रहा था। बसव और उसके सहयोगियों का पाशुपत शैव गुरू से इष्ट लिंग ग्रहण करने वालों को निर्देश था कि वे वह लिंग वीरशैव गुरू को लौटा दें और उससे नया लिंग लें।

वीरशैव मत के प्रभाव में आने वाले सभी लोग इसका गम्भीरता से पालन नहीं करते थे। नई शिक्षा के प्रति पूरी निष्ठा पैदा करने के लिए असीम धैर्य से समझाने बुझाने की जरूरत रहती है। यह कोई आसान काम न था। (नव-दीक्षितों में ऐसे भी थे जो जाति के आधार पर वीरशैवों में भेद करते थे। उदाहरणतया अछूत वर्ण से आये वीरशैव को दूसरे अछूत वीरशैव कहकर पुकारते थे तथा उसका तिरस्कार करते। वे तर्क देते थे कि सहभोज आदि में तो वे कोई भेदभाव नहीं रखते। किंतु शादी-ब्याह में वे भेद करते ही थे।)

वे मानते हैं कि अक्षत है उनकी प्रतिज्ञा
भोजन और पहनावे में;
जब जोड़ने होते हैं रिश्ते—
उनकी नजर टिकती है जाति पर।
कह सकते हो कैसे उनको भक्त ?
मान सकते हो कैसे उनको दक्ष ?
मुझे ध्यान दो—ओ कुदालसंगमेश्वर
यह तो वह रजस्वला नारी है
नहाती है जो पवित्र जल में।

बसव ने जिस बुराई की भर्त्सना की थी वह दूसरे भेस में उनके अनुयायियों में घुस आयी थी। धार्मिक नेता इसके प्रति पूरी तरह से सजग थे तथा सभी तरह के भेद भाव को समूल उखाड़ने में सक्रिय थे। (बसव ने अर्थहीन कर्मकांड का खंडन किया। उसने सरल और सार्थक आचरण पर बल दिया जिससे स्वच्छ और उच्च जीवन का निर्माण होता है। चन्नबसव ने ऐसे पचास आचारों को

सूचीबद्ध किया है। इनमें नित्य स्नान, मंजन, अहिंसा, सच बोलना, पति पत्नी की परस्पर निष्ठा आदि शामिल हैं। इसकी आवश्यकता अपने अनुयायियों को जीवन के बुनियादी उसूल सिखाना और नेताओं के लिए अनिवार्य ठहराया गया हालांकि वीरशैवमत का जोर आन्तरिक पवित्रता पर था, तथापि उसने बाहरी शुद्धता के महत्व की उपेक्षा नहीं की।

वीरशैव प्रचारकों ने घूम-घूमकर सब जगह अपने मत का प्रचार किया। बसव को तथा दूसरों को इसकी जानकारी मिली कि कुछ धर्म प्रचारक गरीबों के घर में बने भोजन को स्वीकार नहीं करते हैं। इसकी जगह वे उनसे सीधा लेकर अन्यत्र पकाते हैं। धर्म के नेताओं ने इस रवैये की तीव्र भर्त्सना की। सामाजिकता के लिहाज से कोई भी वीरशैव किसी दूसरे वीरशैव से न तो बड़ा है और न ही छोटा। बसव ने स्पष्ट किया : 'व्यक्ति किसी भी जाति का हो सकता है। हर वह व्यक्ति उच्च जाति का है जो शरीर पर लिंग धारण करता है।' ऐसे भी लोग थे जिन्हें अपने वीरशैव होने का अहंकार था। वे गैर वीरशैवों के प्रति तिरस्कार भावना का प्रदर्शन करते थे। ऐसे भी उदाहरण थे कि कुछ लोग वीरशैव धर्म को छोड़कर वापस पुराने धर्म में लौट जाते थे। बसव ने अपने लोगों को ऐसे भगोड़ों और रंग बदलने वालों की उपेक्षा करने की सलाह दी।

मंदिर एक सुप्रतिष्ठित धार्मिक और सामाजिक संस्था थी। पूजा स्थान होने के अतिरिक्त, यह शहर अथवा गांव की तमाम गतिविधियों का केन्द्र बिंदु होता था। हम पहले देख चुके हैं कि पाशुपत शैव सन्यासी मंदिरों अथवा उनसे जुड़े मठों में निवास करते थे। बहुतेरे शिव मंदिर पाशुपत धर्म के गढ़ थे। धनी और विशेषाधिकारों वाले लोग विशाल धन राशि की लागत से मंदिर बनवाते थे। मंदिर बनते ही लोग पूरे वर्ष दीपकों को जलाए रखने का काम, मंदिर में नर्तकियों का खर्चा, अनेक उत्सवों का खर्च, मंदिर में रहने वाले सन्यासियों का खर्च, मंदिर में चलने वाली शिक्षा आदि विविध कामों के लिए दान उपहार लाते। इस तरह के दानों को अंकित करने वाले असंख्य अभिलेख हैं। ज़ाहिर है कि अछूतों को मंदिरों के अहाते में नहीं घुसने दिया जाता था।

बसव की दृष्टि में मंदिर धनी और मतान्ध लोगों की संस्था थी। उसने तथा उसके सहयोगियों ने स्पष्ट निर्देश दिया कि कोई भी वीरशैव मंदिर नहीं बनायेगा, न ही मंदिर में जायगा और पूजा करेगा। ईश्वर इष्ट लिंग की शक्ल में व्यक्ति के शरीर पर मौजूद है और अपने असली रूप में प्रत्येक के हृदय में विराजमान है।

जिनके पास धन है, वही
बनाते हैं शिवालय : मैं क्या बनाऊं ?
स्वामी, निर्धन हूं मैं ।
मेरे पांव ही इसके स्तम्भ हैं
सुनो कुदालसंगमेश्वर ।
स्थावर तो नश्वर है;
मगर सुरक्षित है जो जंगम है ।

बसव ने कहा : मंदिर स्थावर, अचल है अतः वह मृत्यु और अवरोध का प्रतीक है। शरीर जो कि जंगम है—सचल मंदिर है । वह विकास और जीवन का प्रतीक है । अपने शरीर को ईश्वर का निवास बनाओ । भक्त का ईश्वर के प्रति प्रेम समूह में नहीं परखा जाता । एकांत में ही उसकी परख है जब भक्त भगवान के पास अकेला होता है ।

बसव को मालूम था कि मंदिर-विरोध अव्यवहारिक बेशक हो पर आवश्यक है । चूंकि मतांध लोग अछूतों के मंदिर प्रवेश के लिए तैयार नहीं थे; और बसव के पास न तो साधन और न ही वह इच्छा थी जिससे मंदिर बनते हैं । हमें ध्यान रखना होगा कि बसव के अधिकांश सहयोगी और अनुवर्ती निर्धन थे । अतः बसव के पास मंदिरों के बहिष्कार के अलावा कोई विकल्प भी नहीं था । इस बहिष्कार का एक प्रयोजन पाशुपतों पर चोट करना भी था क्योंकि मंदिर उनके गढ़ थे ।

इसके अलावा इन दिनों में परिवहन की व्यवस्था इतनी अपर्याप्त थी कि वाराणसी और रामेश्वरम् जैसी जगह की तीर्थ यात्रा जोखिमों और खतरों से भरी थी । यात्रा उतनी मुश्किल होती थी कि कई यात्री अपनी अंतिम वसीयत करके जाते थे क्योंकि वापिस लौटना अनिश्चित रहता था । इसके साक्षी कई अभिलेख हैं । बसव और दूसरों की नजर में ऐसी यात्राएं समय, धन और श्रम गंवाने का ही पर्याय हैं । इसीलिए उन्होंने स्पष्ट किया है कि वीरशैव के लिए तीर्थ जाना अनावश्यक है क्योंकि वह स्वयं ईश्वर का निवास है ।

(बसव को अंधविश्वासों के प्रति घृणा थी । उसने अपने लोगों से आग्रह किया कि वे इनसे बचें । वह मजाक उड़ाता कि छूने से कोई भ्रष्ट हो सकता है । उसका कहना था कि वीरशैवों के लिए हर दिन शुभ है जब वे ईश्वर का स्मरण करते हैं, उनको इसके लिए ज्योतिषियों के फेर में पड़ने की जरूरत नहीं ।) बसव का हरिजनों यानि अछूतों से असीम प्यार था । वह उनको होलेय पुकारे जाने के खिलाफ था । वे मुख्य बस्तियों के बाहर केवल हरिजनों के लिए बनी बस्ती में रहने को मजबूर थे । बसव इसके खिलाफ था । वह ऐसे कई

सन्तों के प्रति भक्ति रखता था जो जाति से हरिजन थे। उसके अपने सहयोगियों में कई हरिजन थे और उनके प्रति सभी का आदर था। बसव ने जाति समस्या पर विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि कोई भी जाति उस धन्धे की वजह से जो वह अपने लोगों को करने को मजबूर करती है शेष से भिन्न पहचान बनाती है। उदाहरणस्वरूप वेदपाठी ब्राह्मण कहायगा, कपड़ा बनाने की कारीगरी करने वाला जुलाहा और जूता बनाने वाला चमार। सभी समान हैं। बसव के शब्दों में : कोई मनुष्य (अपनी मां के) कान से नहीं निकलता। तो क्या संसार में अछूत नहीं हैं ? बसव ने जवाब दिया कि क्यों नहीं।' मगर उसकी अस्पृश्य की परिभाषा भिन्न थी :

चांडाल वही जो हत्यारा है
औ, खाता सड़ा मांस—वह है नीच जात।
कहां हैं वर्ण यहां—कहां ?
जिसे सब जीवों से प्यार—
वही तो उच्च जात
हमारे कुदाल संगम का आश्रय !

बसव ने अपने विचारों के अनुसार आचरण किया। ऐसे ही वह दूसरों से अपेक्षा रखते थे। उन्होंने यहां तक घोषणा कर दी कि वह हरिजन भक्त चन्नप्पा के नौकरों की अवैध संतान है। उसने कहा कि यदि कोई हरिजन भक्त होता है तो वह न केवल उसका सम्मान करेगा बल्कि उसके कुत्ते तक की शोभा-यात्रा निकालने को तैयार है। बसव का निकट सहयोगी कक्कप भी हरिजन था। अन्य भी थे जिनमें शिवांगय्या की कहानी उल्लेखनीय है।

कल्याण नगर के बाहर हरिजनों की बस्ती थी। उनमें कई वीरशैव हो चुके थे। बसव तथा दूसरे उनकी गली में अक्सर जाते थे तथा उन्होंने इसका नाम महानतर माहेश्वरों[1] की गली रख छोड़ा था। एक दिन जब बसव गली से निकल रहा था तो उसने सुना कि कोई शिव की स्तुति गा रहा है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि गाने वाला सम्बोली (हरिजन) नागिदेव अथवा शिवगय्या है। शहर में शिकायत थी कि वह उच्च वर्ण के लोगों का आदर नहीं करता था और उसने सम्बोली (दूर हो जाओ) चिल्लाना भी छोड़ दिया था। वह महान् शिवभक्त था। बसव उसके घर गया, शिव कीर्तन में हिस्सा लिया, उसके साथ

1. माहेश्वर का अर्थ है शिवभक्त तथा यह शब्द वीरशैवों के लिए भी है। यह ध्यान देने की बात है कि बसव ने शूद्रों का नामकरण महानतर वीरशैव रख छोड़ा था। हम जानते हैं कि रामानुज उन्हें 'ईश्वर के जन' कहता था तथा गांधी के अनुसार वे ईश्वर के प्रिय हैं।

खाना खाया। रूढ़िवादियों को अपने एक गुप्तचर से इसकी सूचना मिली। ब्राह्मण तो खास तौर से इसी घड़ी की प्रतीक्षा में थे। वे समूहबद्ध होकर बिज्जल के पास पहुंचे और शिकायत की कि उसका कोषाध्यक्ष बसव वर्णाश्रम धर्म को अंगूठा दिखाकर हरिजन के घर गया है। उन्होंने कहा कि न केवल बसव दूषित हुआ है बल्कि वह अपने संसर्ग से राजसभा को भी दूषित कर रहा है। बिज्जल ने बसव को बुला भेजा और खुले में बैठ गया कि बसव राजसभा में प्रवेश कर उसे दूषित न कर दे। बसव के हाजिर होने पर राजा ने उनकी कड़ी डांट फटकार की। आगे की कहानी इस तरह है कि बसव ने चमत्कार दिखा कर सिद्ध कर दिया कि इन ब्राह्मणों का हृदय अशुद्ध है और शिवांगय्या का हृदय शुद्ध। बिज्जल वर्ण धर्म मानने वाले परम्परागत धर्म में आस्था रखता था और उसे मानवमात्र की समानता वाला बसव का धर्म नापसन्द था। किन्तु बसव के अनुवर्तियों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और अपने जीवन में उतारना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए ग्वाले रमन्ना ने अपने एक वचन में कहा है कि संसार में दो ही वर्ण हैं: अच्छे लोगों की जाति और बुरे लोगों की जाति। मल्लाह चौदय्या ने स्पष्ट करने की कोशिश की कि अछूत नगर या गांव के बाहर नहीं बल्कि अंदर बसते हैं। उसने तर्क दिया "अछूत वह है जो मां को गाली देता है, पिता के साथ दुर्व्यवहार करता है, दूसरे की बीबी पर आसक्त है, सड़क पर कांटे फेंकता है, 'अंदर' के इन अछूतों से हमें क्या लाभ है। मगर 'बाहरी' अछूत समाज के लिए उपयोगी है क्योंकि वे जूते, रस्सियां, कोड़े और नावें मुहय्या करते हैं।" हम बाद में देखेंगे कि ऊंची जाति वालों को अछूत जातियों में शादी-ब्याह का संबंध जोड़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाने लगा।

'कायक' नामक एक शिक्षा और थी जिस पर सभी को चलने का आग्रह किया जाता था। कायक का शब्दार्थ है काया संबंधी अतः शारीरिक श्रम अथवा कोई भी काम जो व्यक्ति स्वीकार करता है वह कायक है। बसव तथा अन्यों के मत में प्रत्येक को इच्छानुसार कोई न कोई काम ईमानदारी से करना चाहिए। किसी को भी समाज पर भार बनकर नहीं जीना चाहिए।

नुलिया चन्दय्या ने कहा कि कड़ी मेहनत करने वाली अर्थात् कायकव्रती की छोटी से छोटी भेंट भी ईश्वर स्वीकार कर लेता है। ईश्वर को किसी भी तरह का शोषण स्वीकार नहीं। अतः कायक से अभिप्राय है कठोर श्रम चाहे वह शारीरिक हो अथवा बौद्धिक। बसव बिज्जल के यहां कोषाध्यक्ष था और यही उसका कायक था। कायक के अन्य अनुषंग भी है। व्यक्ति जो भी धंधा अपनाये वह उसके धार्मिक आचार और ईश्वर प्राप्ति में सहायक होना चाहिए।

अल्लम ने कहा—"हम उसे काम के द्वारा हासिल करें।" व्यक्ति जो भी काम अख्तियार करे उसे ईमानदारी से करे तथा उसका एक हिस्सा जंगमों[1] को और गरीबों को दे।

कायक की धारणा में यह भी निहित था कि कोई भी पेशा दूसरे से छोटा या बड़ा नहीं। सबका दर्जा समान है और काम करने वाले इज्जत के हकदार हैं। समकालीन साहित्य से बसव के अनुयायियों द्वारा स्वीकार किये गये पेशों की रोचक सूची मिलती है। मदीवल मचय्या एक धोबी था, मोलिगेय मरय्या एक लकड़हारा, चौदय्या एक नाविक, केठय्या एक टोकरी बनाने वाला, चन्दय्या रस्सी बनाने वाला, हल्लय्या एक मोची, संगन्ना एक वैद्य, रमन्ना एक चरवाहा था। अलग-अलग पेशों वाले दूसरे भी थे जो कल्याण आये और बसव की शिक्षाओं से प्रेरित हुए। उनमें अधिकांश गरीब थे किन्तु वे सभी धार्मिक विचार चर्चा में शिरकत करते और अपनी राय स्वतन्त्रता से रखते।

बसव एक अधिकारी मात्र थे। समाज पर नये नियम लादना और उसे जनतन्त्र के युग में ले आना उनके अख्तियार में नहीं था। तो भी उसने अपने अनुयायियों को यह समझाया तथा जनतात्रिक जीवन जीने की शिक्षा दी। उसने यह सीख दी कि धन में आसक्त न रहो। बसव ने बताया कि गरीबों को प्यार करो और उनकी सेवा करो। उसको धनी लोगों और उनके घमंड से तीव्र नफरत थी।

> सांप के काटे से जवाबतलब हो सकता है
> भूत से बाधित को पूछ सकते हो
> किंतु कंचन के प्रेत से ग्रस्त से नहीं
> कर सकते सवाल·········किंतु
> जब आता है पास सयाना
> निर्धनता का तो बोलता है वो एकदम
> हे कुदालसंगम स्वामी।

निर्धनता का सयाना जब आता है तो धनी का मौन एकदम टूटता है—यह बात मौलिक भी है और सुंदर भी। बसव की दृढ़ धारणा थी कि धनी लोगों का धन संग्रह गलत तरीकों से ही होता है। इसीलिए उनका पैसा प्रायश्चित और आयोजनों पर ही अधिकतर खर्च होता है और जरूरतमंदों पर नहीं। बसव की व्यंग्योक्ति है कि कुतिया का दूध उसके पिल्लों के लिए ही होता है, उससे खीर नहीं बनती। इसकी व्यंजना है कि गलत तरीकों से जमा किया

1. वीरशैव प्रचारकों को जंगम कहा जाता था तथा उनके पालन पोषण की जिम्मेदारी वीरशैव समाज की थी।

गया धन नफरत के ही योग्य है। बसव के मत में धन तमाम बुराइयों का मूल है। धनी सदा अपनी सम्पत्ति की ही चिंता में रहते हैं—उन्हें ईश्वर चिंतन के लिए समय नहीं होता। बसव ने उनकी तुलना उस उपासक से की जो अपने जूते मंदिर के बाहर उतारकर देवता के सम्मुख खड़ा तो है मगर मन में चिंता जूतों की ही बनी हुई है कि कहीं चोरी न चले जाएं। इसीलिए बसव ने चेताया कि धन के पीछे पागल न हों। धनी लोगों का ईश्वर-प्रेम दिखावे और ढकोसले से ज्यादा नहीं है।

गरीबों की बात भिन्न है। बसव ने कहा—"उनके घर देखो : झोंपड़ियां हैं। उनके दिल देखो : भव्य हैं।" उसने ताकीद की कि गरीब भक्त के साथ दुर्व्यवहार न हो बल्कि उसे निमंत्रित करके सत्कार किया जाना चाहिए।

बसव ने अपने धर्म की खातिर अपना सर्वस्व दे डाला। उनकी ईश्वर से प्रार्थना थी कि वह उसे खूब धन दे कि वह जरूरतमंदों को बांटते रहें और खुद हमेशा निर्धन रहें।

मेरे घर में टूटे बर्तन
भी न हों
ईश, मेरे हाथों में
एक तिनका घास दो।
गर, मैं बाहर जाऊं और मांगू
"ईश्वर के लिए कुछ" तो
लोग कहें "जाओ, ईश्वर के लिए।"
ओ कुदालसंगमेश्वर।

बसव गरीबों के मसीहा थे। उसने घोषणा की कि गरीबी कोई पाप नहीं और न ही गरीबों को हीनता की ग्रंथि का शिकार होना चाहिए। उसने जनता में आत्मसम्मान की भावना रोपी। वह निर्धनतम लोगों के घरों में गया, उनसे घुला-मिला और उनके साथ खाने में कभी संकोच न किया। उनका व्यवहार ऐसा था कि मानों वह उनका चाकर हो। उनकी अपने लोगों से यही आशा रहती थी कि वे कोई भी पेशा स्वीकार कर कठोर श्रम करें और खुश रहें। इस दृष्टि से देखें तो निस्संकोच कह सकते हैं कि उनका दृष्टिकोण समाजवादी था।

पहले अध्याय में हमने देखा कि नारियां, आमतौर से उन कई अधिकारों से वंचित थीं जो पुरुषों को प्राप्त थे। सामाजिक स्तर पर वे पुरुषों से हीन समझी जाती थीं और उनकी तमाम गतिविधियां घर की चारदीवारी तक ही थीं। इन स्थितियों में बसव और उनके सहयोगियों ने उनके प्रति होने वाले

अन्याय का विरोध किया और घोषणा की कि उसे आजादी का अपना हक मिलना चाहिए। उदाहरण के लिए अच्छी शिक्षा का अधिकार, अपने आजादी से अभिव्यक्त करने का अधिकार, खुले वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार, और सबसे बढ़कर आध्यात्मिक जीवनचर्या का अधिकार। औरत को सशरीर माया माना जाता था और इसलिए सभी बुराइयों का द्वार समझा जाता था। बसव नारी मात्र के साथ इस अपवाद को जोड़ने के विरुद्ध था। ग्यारहवीं शती के शैव संत देवर दसीमय्या ने नारी को सम्मान देने के पक्ष में आवाज उठायी थी। उसने कहा :

यदि स्तन और लम्बे केश है
तो नारी कहेंगे
यदि दाढ़ी और मूछ हैं
तो नर कहेंगे
किन्तु आत्मा जो सक्रिय है
न नर है न ही नारी

उसी सन्त ने नर और नारी की तुलना एक दूसरे के ऊपर पड़ी दो लकड़ियों से की है जिनसे आग पैदा की जाती है। हम यह भी पढ़ते हैं कि वे अपनी इच्छा की पत्नी ढूंढने गये और उन्हें मिली भी। उसने कहा है कि शिव को उस जोड़े की प्रार्थना अच्छी लगती है जिसमें आपसी समझ और समरसता है।

बसव और साथियों ने दसीमय्या से यह सब सीखा और नारी मुक्ति को अपने आंदोलन का एक लक्ष्य बनाया। बसव के एक सहयोगी सिद्धधर्म ने कहा कि नारी माया नहीं बल्कि स्वयं ईश्वर है। उसके दूसरे सहयोगी अल्लम ने तो माया की नयी ही परिभाषा दी। उसके अनुसार न तो सोना न पृथ्वी और न ही नारी माया है। वस्तुओं के स्वामित्व और भोग की मनुष्य की इच्छा ही माया है। एक अन्य रचना में अल्लम ने कहा है कि नर और नारी दो आंखों के समान हैं : कोई अपने को दूसरे से बेहतर नहीं कह सकती।

वीरशैव धर्म ने ब्रह्मचर्य को महिमामंडित नहीं किया और न ही वैवाहिक जीवन की आलोचना की है। यद्यपि सिद्धधर्म और अल्लम आदि कुछ नेता ब्रह्मचारी थे तथापि उनकी संख्या स्वल्प थी; स्वयं बसव जैसे असंख्य दूसरे थे जो विवाहित थे। बसव की दो पत्नियां थीं।

नारियों को भी विविध काम करके परिवार के लिए कमाने को प्रोत्साहित किया जाता तथा गीत और पद्य के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति के लिए भी प्रेरित किया जाता। परिणामतः, उसी शती के रहस्यवादी संतों में कम से कम बत्तीस तो नारियां हैं जिन्होंने वचनों की रचना की है। बसव की दोनों पत्नियों नील-

लोचने गंगांबिके ने वचन रचे हैं। बसव की बड़ी बहन नगलम्बे ने भी वचन कहे हैं। सूत कातने वाली अम्भाव्वे, चिल्ला बेचने वाली पित्ताव्वे और खलिहान पर काम करने वाली सीमाव्वे भी इसी श्रेणी में हैं। कुछ महिलाओं ने दूसरी तरह के काम संभाले, मसलन प्रभात से पहले उठकर घरों में जाकर लोगों को ध्यान करने को जगाना। कुछ ने कायक के तौर पर सार्वजनिक स्थानों पर वचनों के कीर्तन का काम अंगीकार किया। अक्कमहादेवी, रानीमहादेवी, मुक्तायक्का और लक्काम्मा द्वारा रचित वचनों का साहित्यिक महत्व उत्तम कोटि का है। उनकी (रहस्य) अनुभूति महान आध्यात्मिक स्तर की थी। ये महिलायें इस कदर साहसी बन गयीं थी कि मौका पड़ने पर समाज के खिलाफ डट जाती थीं। कुछ घटनाओं का यहां उल्लेख और विस्तृत वर्णन बाद में करेंगे। अक्कमहादेवी ने तय कर रखा था कि किसी मर्त्य से विवाह न करेंगी चूंकि बचपन में ही उसने मन में ईश्वर को पति रूप में वर लिया था। उसकी शादी एक राजा से जबरन कर दी गई थी तथा उसे राजा के साथ रहते हुए ईश्वर से प्रेम करते रहना असंभव जान पड़ा। वह इतनी साहसी थी कि उसने पति का त्याग कर दिया और महलों से बाहर आ गयी। उसके बाद वह विचरणशील संत का जीवन बिताने लगी। हम ऐसी महिलाओं की बाबत पढ़ते हैं जो अपने पतियों के संग आध्यात्मिक साधना किया करती थीं। उनमें कई तो सुशिक्षित थीं और बसव के घर होने वाली धर्मचर्चा में हिस्सेदारी करती थीं। नारियों को अपनी सामर्थ्य को साकार करने और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए उचित वातावरण तैयार किया गया। इसमें संदेह है कि किसी समय अन्य भारतीय भाषा में इतनी संख्या में लेखिकाओं का अस्तित्व रहा हो।

इस आंदोलन की दूसरी उल्लेखनीय बात है कि बसव के अनुयायियों को अपनी बात रखने की पूरी स्वतन्त्रता थी। हम पहले देख चुके हैं कि हजारों भक्त बसव के घर आते थे और वह भक्तिपद गाता हुआ, शिव के बारे में बातें करता हुआ रातें उन्हीं के साथ बिताता था। कई बार यह जमावड़ा चर्चा गोष्ठी की शक्ल ले लेता जहां आंदोलन और उनके धर्म के संबंध में आयी समस्याओं पर बहसें होतीं। इन बहसों में बसव हमेशा विनम्र भागीदार और श्रोता बनकर रहता। भाग लेने वाले सदा मुक्त रूप में हिस्सा लेते और निर्भय होकर अपने विचार रखते। उनके धर्म संबंधी तमाम ब्यौरों पर सिलसिलेवार विचार होता। धोबी मचय्या ने बसव की कई गलतियों की आलोचना की थी।

बसव के ये विचार न केवल नये थे बल्कि अपने युग से काफी आगे के थे। इनमें से प्रत्येक यथास्थितिवादियों पर चोट करता था। आंदोलन की प्रक्रिया

में नये विचार आये और आम आदमी को उसके अधिकारों के प्रति सजग किया गया। जब जनता को अपने प्रति हुए अन्याय की चेतना हुई तो राजनीतिक और धार्मिक शक्ति से संपन्न लोग विचलित होने लगे। यह पहले दिखाया जा चुका है कि ब्राह्मण तथा उच्च वर्णों के प्रभुत्व पर प्रश्न चिह्न लगाने के प्रयास हो रहे थे। उनकी श्रेष्ठता को एक धोबी और अछूत ने चुनौती दे दी। बसव पर आरोप लगाया गया कि वह लोगों को भड़का रहा है और समाज व्यवस्था को अस्थिर कर रहा है। हम पहले देख चुके हैं कि रूढ़िवादी लोगों ने बसव को नीचा दिखाने की कोशिश कीं जिससे उस पर और क्रांति पर लांछन लगे। अफवाहें थीं कि उसका जीवन संकट में है। ये बातें बसव के लिए नई न थीं और उसने इनकी उपेक्षा कर दी। उसने कहा कि वह किसी भी समय परिणाम भुगतने को तैयार है।

जो कल के गर्भ में है
मेरे लिए, आज हो;
और आज का भाग्य अभी घटे,
यहां कोई कायर हृदय नहीं है।
कहते हैं कि हर पैदा हुए की मौत है;
यह किसके बस में है
हरि, ब्रह्मा या कोई देवता कि बच जाय
उससे जो हमारे
कुदालसंगमेश्वर ने लिख दिया है।

उसने अपने शत्रुओं से कह दिया कि वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ पायेंगे—भौंकने वाले कुत्ते उसका क्या कर सकते है जो हाथी पर सवार है। वह जन्मजात योद्धा था—इसकी गवाही यह वचन देगा :

अपने अधिकारों की रक्षा में हठी के समान
मैं टाल देना नहीं चाहता
संसार छोड़ चुकने के बाद, शरण
नहीं डरता किसी से, चूंकि
अब वह रहता है कुदालसंगमेश्वर
के प्रकाश राज्य में।

वह जानता था कि जो कुछ भी वह कर रहा है ठीक है तथा उसे भगवान शिव का आशीर्वाद और संरक्षण प्राप्त है। यह वो बात थी जो उसे बल देती थी शत्रुओं के बढ़ते हुए विरोध के बावजूद।

बसव द्वारा लाए गए अनेक समाज सुधार नये हैं और हमें प्रशंसा के लिए

बाध्य करते थे। उसके द्वारा सिखाए गए विचार व्यवहार में उतारे गये और सिद्ध करने के लिए हमारे पास प्रमाण है कि व्यापक जनता ने उन्हें समझा और अपनाया। हम भारत के इतिहास में इस मात्रा में इस प्रकार की बहुत सी सामाजिक धार्मिक क्रांतियां नहीं पाते हैं। कर्णाटक के इतिहास में, निस्संदेह यह पहली उल्लेखनीय क्रांति रही है।

7. आध्यात्मिक साधक

बसव के बौद्धिक और आध्यात्मिक द्वन्द्व उसकी जीवनी को सर्वाधिक रोचक बनाते हैं। पिछले अध्याय में हमने देखा कि कैसे उसकी बुद्धि ने समकालीन समाज की नब्ज पकड़ ली थी और कैसे उसने हमारी दुनिया में अधिक मिठास-भरी और प्रकाशमय बनाने की अनथक कोशिश की। यह उसकी पहली लड़ाई थी। दूसरी लड़ाई बाहर नहीं बल्कि भीतरी दुनिया में घटी। किसी और या किन्हीं औरों से नहीं मगर अपने से ही।

बसव एक भक्त था और उसके वचन उसके आध्यात्मिक द्वन्द्वों के दस्तावेज का काम करते हैं। इस तरह के द्वन्द्व का हर साधक को अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौर में मुकाबिला करना पड़ता है। इन वचनों से उसके रोजमर्रा की जिंदगी पर विशेष रोशनी नहीं पड़ती, किंतु ये उसके आध्यात्मिक विकास के पूरे इतिहास को उघाड़ देते हैं। इनसे उस संघर्ष का जायजा होता है जो उसने अपने मन को शुद्ध रखने तथा अन्तःकरण को ईश्वर के निवास के लिए उचित स्थान बनाने के लिए किया। ये वचन उसके ईश्वर तक पहुंचने और उसमें एकमेक हो जाने के अनथक प्रयास का लेखा जोखा है।

बसव की साधना तो बागेवाडी से शुरू हो गयी थी। किंतु जैसा हमने देखा ईश्वर के प्रति उसके प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति कुदालसंगम में ही हुई और तब से लेकर बसव पक्का आध्यात्मिक साधक था।

यदि बसव ने समाज को उसकी बुराइयों के लिए दोषी ठहराया तो अपनी कमजोरियों के लिए अपनी ज्यादा जोरदार आलोचना की। सामान्य मनुष्य की तमाम दुर्बलताएं उसमें थीं और वह दुःखद रूप से उनके प्रति सजग था। उसको बोध था कि उसका मस्तिष्क पीपल के फल के समान सुन्दर और लुभावना होने के बावजूद अंदर कीड़ों से भरा था। मन कोई ऐसी चीज नहीं कि थाम कर सफाई कर दो; वह एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदने वाले बंदर के समान है। बसव ने अपने मन को ईश्वर से प्रेम करने को सिखाने के लिए जी तोड़ कोशिश की। किंतु यह संस्कार अपनी सभी ध्वनियों और रंगों के साथ हमला करके फिर मजबूर कर देता कि सांसारिक सुखों के पीछे मन दौड़ पड़े।

कुत्ते के समान मेरा जीवन
घी के लोभ में
चाट रहा तलवार के तेज धार को।
मन मेरा नहीं छोड़ता
संसार के सरोकार।
हे कुदालसंगम के स्वामी
दया कर, मुक्त करो
मुझे कुत्ते के जीवन से।

बसव को ईश्वर पर मन एकाग्र करने में मुश्किल होती। हताशा में वह रोता चिल्लाता। वह अनुभव करता कि ईश्वर के बजाए वह इन्द्रिय सुखों पर अटकता है।

पालकी पर सवार मेरा मन
कुछ देख लेने पर
लौट आता है अपनी प्रकृति को
यह आफत। इन्द्रियों का गुलाम।
हे ईश्वर ! यह नहीं करने देता
तेरा स्मरण प्रतिदिन·······
हे कुदालसंगमेश्वर,
दया करो कि मैं चाहूं
तुम्हारे चरणों को। कृपा करो।
यह मन तुम्हें तभी मानता है
अगर तुम इसकी मर्जी मुताबिक
बोलो, तुम इसे काट दो
यह है शत्रु तुम्हारा।
मैं इसे आग में फेंक दूंगा
इस मन को नहीं विश्वास
कुदालसंगम के शरणों पर।
लालच, वासना, आलस्य, झूठ
इन्द्रियों की चंचलता
उद्दण्डता और ठगी
गुस्सा, झूठ और मक्कारी॥
मेरी जुबान से काट डालो।
ये नहीं पहुंचने देते तुम तक मुझे

इसलिए इन्हें मिटा दो
और शुद्ध कर दो इन्द्रिय ग्राम को
हे कुदालसंगमेश्वर।)
ईश्वर तुम्हीं ने तो सामने
फैलायी है हरी चरागाह इन्द्रियों के लिए।
जानवर क्या जाने ? उसको लुभाते हैं
हरियाली और घास
मुझे दूर करो इन्द्रियों से और भर दो
पवित्रता से तृप्ति होने तक।
मुझे सच्ची बुद्धि का पेय दो।
मेरा पोषण करो,
हे कुदाल संगमेश्वर।
(दलदल में धंसे पशु की नाईं
मैं कभी इधर सिर मारता हूं
कभी उधर······
हे भगवान् जब तक तुम
सींग पकड़ मेरा उद्धार नहीं करोगे
कोई दूसरा मुझे बचाने वाला नहीं।

ये तथा ऐसी कई दूसरी रचनाएं दिखाती हैं कि बसव ने मनश्शुद्धि बनाए रखने की कितनी कोशिश की। वह जानता था कि अपने को ठीक करके ही दूसरों को ठीक किया जा सकता है और सुधारक हुआ जा सकता है।

ईश्वर तक पहुंचने के कई रास्तों में से, बसव ने भक्तिमार्ग को चुना। उसने कहा कि वेद मन्त्रों के उच्चार से भगवान् प्रसन्न नहीं होते—केवल भक्ति से ही होते हैं।

वे कहते हैं कि शिव को नाद प्रिय है,
यह नहीं है।
वे कहते हैं कि शिव को वेद प्रिय हैं,
यह नहीं है।
नाद का रचयिता रावण
मारा गया।
ब्रह्मा का सिर भी गया
जो वेदपाठी था।
हमारे कुदालसंगमेश्वर को

न नाद से और न वेद से लगाव है;
भक्ति है उसको प्यारी।

नारद भक्तिसूत्र के अनुसार ईश्वर के प्रति अनंत अनुराग ही भक्ति है। यह उस अनंत की कृपा के लिए अनन्य मन से निरंतर व्यग्रता और व्याकुलता है। ईश्वर की कृपा उस पर अवतरित होती है जो प्यार से, मन के पूर्ण अनुराग से उसकी प्रार्थना करता है।

हम पहले देख चुके हैं कि बसव सारे सांसारिक बंधन त्याग कर कुदाल-संगम आया जहां उसके लिए ईश्वर ही सब कुछ हो गया।

पिता हो तुम, माता भी
तुम ही हो, बान्धव मेरे
तुम बिन नहीं कोई बिरादरी।
हे कुदालसंगमेश्वर,
मेरे साथ जो चाहे करो
देखो ईश्वर—
तुम हो मेरा धन, कल्याण और मुसीबत भी।
और न कोई, तुम ही हो
मेरे पिता माता
हे कुदालसंगमेश्वर

जंगम में खो गये बच्चे की भांति बसव उसके लिए रोता और चिल्लाता था।

'स्वामी ओ स्वामी' मैं पुकारता जा रहा
'स्वामी ओ स्वामी' मैं चिल्लाता जा रहा
क्या तुम जवाब न दे सकते—'अरे ?'
मैं बिना रुके पुकार रहा
क्या तुम गूंगे हो स्वामी
कुदाल संगम ?

ईश्वर का मौन बसव के लिए रहस्य था और वह हैरानी से सोचता कि क्या कभी उसे देख भी पाएगा। कभी वह सन्देहवादी हो जाता और निराशा उस पर हावी हो जाती इसके बावजूद उसने आशा नहीं त्यागी और अपने को इस ख्याल से तसल्ली देता कि ईश्वर उसकी भक्ति की परीक्षा ले रहे हैं।

क्या कहूं कि तुममें विश्वास था,
कहूं कि तुमसे अनुराग था

और मैंने बेच दिया अपने को तुम्हें
तुम परीक्षा के लिए मुझे झकझोर देते हो
मेरी देह को, मन को और धन को
और जब परीक्षा डिगा नहीं पाती मुझे
तो हमारे कुदालसंगमेश्वर को
दया आकम्पित करती है।

ईश्वर किसी को स्वीकार करने से पहले उसकी परीक्षा लेता है। ईश्वर का भक्ति-कम्पित होना अर्थात् कृपाशील होना आदि वो बातें थीं जिनसे बसव को दर्शन की आशा थी।

द्वन्द्व, निराशा और निराशा के अंधेरे में आशा की किरणें—यही वे बातें थी जिनके कारण वह अधिकाधिक शिवचरणों से लिपटता चला गया। इस अवस्था में बसव के लिए शिव परमेश्वर था और उसके अलावा कोई दूसरा भगवान नहीं था। अन्य देवताओं की हैसियत अधीनस्थ की थी।

जैसाकि हम देख चुके हैं बसव केवल आध्यात्मिक साधक ही नहीं था बल्कि सामाजिक और धार्मिक कामों में लगा हुआ बुद्धिजीवी भी था। वह दो संसारों में जीता था— पार्थिव और आध्यात्मिक। मानों वह दो विरोधी शक्तियों में फंसा हो—प्रत्येक उसे अपनी ओर खींच रही हो। उसने विवशता की इस स्थिति को सुन्दर उपमा के द्वारा चित्रित किया है। वह अपनी तुलना तैरने वाले उस व्यक्ति से करता है जिसके धड़ में कोई बड़ी उत्प्लावक चीज बांध दी गई हो मगर पांवों में बड़ा पत्थर। वह उत्प्लावक वस्तु उसे डूबने नहीं देती और पत्थर उसे सतह पर नहीं आने देते। अंधेरे की इस यन्त्रणा से ही दिव्य प्रकाश प्रकट हुआ। परमेश्वर ने उसकी पुकार का प्रत्युत्तर दिया और बसव को अपनी उपस्थिति का बोध कराया। बसव यह अनुभव करके विस्मित हुआ कि ईश्वर उसके अंदर है। यह आनन्दातिरेक का महान् अनुभव था। वह कह उठा : उसका दर्शन परम सुख था और उससे मिलना दिव्यानुभूति।

साधना की शुरूआत में बसव ईश्वर को स्वामी और अपने को दास मानता था। वह ईश्वर को अपना पति और खुद को 'प्रिया' भी समझता। वीरशैव धर्म ईश्वर-पति और भक्त-पत्नी के मार्ग की वकालत करता है। इसका अभिप्राय है कि भक्त पुरुष या नारी अपने को पत्नी के स्थान पर रखकर ईश्वर की पतिरूप में भक्ति कर सकते हैं। बसव के कई श्रेष्ठतम वचन उसी अवस्था के हैं जब वह ऊपर कहे गये मधुर भाव का पथिक था। उसने निष्ठावान पत्नी का जीवन जीया और अपने 'पति' का प्रेम पाने में सफल हुआ।

बसव को सबसे उदात्त अनुभव तो तब हुआ जब उसने पाया कि ईश्वर

तो उसी में रहता है, नहीं, बल्कि, वह स्वयं ही ईश्वर है।

महानतम से भी मैं महान था
इस चरम ब्रह्मांड में—उदात्त महानता।
कैसे बतलाऊं शब्दों में
कि मैं कुदालसंगमेश्वर के
विशाल प्रकाश के अन्दर हूं;
इस अनुभव ने मूक कर दिया मुझे।

वीरशैव साधकों ने आध्यात्मिक विकास के क्रम सोपान को जैसा अनुभव और अभिव्यक्त किया—वह जानना आवश्यक है। उनके मत में इस विकास प्रक्रिया के छह चरण हैं और प्रत्येक अवस्था साधक की मनस्थिति की द्योतक है। ये छह अवस्थाएं षट्स्थल कहलाती हैं: भक्तस्थल, माहेश्वरस्थल, प्रसादीस्थल, प्राणलिंगी स्थल, शरणस्थल और ऐक्य स्थल।

भक्त—यहां भक्त स्वामी का दास होता है और उसका आध्यात्मिक शिष्यत्व आरम्भ होता है।

माहेश्वर—इस जगह भक्त शिव को छोड़ किसी को भगवान मानने को तैयार नहीं होता।

प्रसादी—इस अवस्था में साधक पर दिव्य कृपा अवतरित होनी शुरू होती है और उसका मन आशा से भर जाता है।

प्राणलिंगी—भक्त ध्यान करते हुए अपनी हथेली में रखे हुए इष्टलिंग को ही ईश्वर मानता है। किन्तु इस अवस्था में उसे बोध होना शुरू होता है कि वह उसके भीतर भी निवास करता है।

शरण—इस चरण में ईश्वर को अपनी इच्छा का पूर्ण समर्पण हो जाता है। धीरे-धीरे व्यक्तित्व का लोप हो जाता है।

ऐक्य—इस अवस्था में साधक का पृथक् अस्तित्व नहीं रहता—वह स्वयं ईश्वर ही हो जाता है।

पहली अवस्था थी 'दासोऽहम्'—मैं उसका दास हूं। अन्तिम अवस्था है सोऽहम्—"मैं वही हूं।" साधक के मानसिक विकास की छह अवस्थाओं का इतिहास बसव और साथियों की साधना के दौरान होने वाले वास्तविक अनुभव पर आधारित है। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि परवर्ती संग्रहकर्त्ताओं ने उनके वचनों को इन्हीं अवस्थाओं के अनुसार क्रमसंयोजन और नामकरण किया है। अतः इन वचनों को कई बार षट्स्थल वचन भी कहा जाता है। बसव का जीवन एक खुली पुस्तक रही है। उसने अपने सहयोगियों और अनुवर्त्तियों से कुछ भी छुपाया नहीं। उसके क्रमिक आध्यात्मिक विकास को दर्शाने वाले उसके

वचनों की तुलना शीशे के डिब्बे में बंद मधुमक्खियों के छत्ते से की जा सकती है जहां बाहर से सब कुछ देखा जा सकता है। उसने स्पष्ट रूप से अपनी त्रुटियों को स्वीकारा है और ईमानदारी से पछतावा भी किया है। उदाहरण के लिए, ये तथ्य कि वह जन्मना ब्राह्मण है और महत्त्वपूर्ण अधिकारी है उसमें जब तब श्रेष्ठता की भावना पैदा करते थे। बसव इसके प्रति जागरूक था और अपने साथियों के सामने जाहिर भी करता था। वह दूसरों के द्वारा अपने सुधार और पथ-निर्देश के लिए हमेशा तत्पर रहता था। उसमें असामान्य विनम्रता थी। जब प्रशंसकों ने उसकी तारीफ की तो बसव ने कहा :

मुझसे छोटा इंसान—
नहीं कोई नहीं है,
शिवभक्तों से महान्—
नहीं कोई नहीं है।
उसके चरण देखो
मेरी बुद्धि देखो
यही मेरी परख
भगवान् कुदालसंगम।

वह अपने को समाज का सेवक, पहरेदार और मेहतर कहता था।

अपने घर में होने वाली धार्मिक चर्चाओं में वह कभी भी अग्रासन पर नहीं बैठता था। यदि कभी आगे आने की प्रार्थना की भी जाती तो "वह हाथों से अपना मुंह ढंककर फुसफुसाता—'क्षमा करें' और जाकर पिछली पंक्ति में बैठ जाता।" वह कायदे तहजीब वाला परिष्कृत व्यक्ति था। उसने अपने शिष्यों को आगन्तुकों के प्रति विनम्र होना सिखाया। "यदि तुम उन्हें कुछ दे नहीं सकते तो मीठी वाणी ही दो (उसकी कोई कीमत भी नहीं है)" उसका कहना था।

क्या इससे तुम भद्दे लगोगे यदि कहो
'आ जाइये, कैसे हैं ?'
यह कहते क्या आंगन धंस जाता है
'बैठ जायें कृपा कर ?'
क्या तुम्हारा सिर या पेट फट जायेगा
अगर किसी एक से बात कर लो ?
यदि तुम्हारे पास देने को नहीं, दया भी नहीं
तो निश्चय कुदालसंगमेश्वर
तुम्हें पटक देगा और नाक काट लेगा।

वह किसी भी तरह की कर्म ही नहीं वाणी की भी हिंसा के विरुद्ध था ।

ध्यान दो कि पुण्य और पाप
तुम्हारे इच्छा पर निर्भर है;
'श्रीमन्' कहना ही स्वर्ग है
'तुकारना' ही नरक है······
हे कुदालसंगमनाथ,
'प्रभु' और 'सन्त' और 'स्वामी'
तुम पर कृपा करें कहना
ही कैलाश है ।

बसव के समकालीन मारुलशंकर ने कहा "बसव का अपनाया रास्ता ही (अनुयायियों के लिए) पथ था और उसके कहे शब्द वेद थे ।" बसव के दूसरे समकालीन अल्लमप्रभु ने बसव को स्वर्ग पहुंचाने वाली सीढ़ी कहकर उसका वर्णन किया है। उसके सहयोगी उसे निदेशक और सिद्धान्तकार मानते थे । अपने जीवन काल में ही उसके चमत्कारों की कहानियां चल पड़ी थीं । किन्तु हमारे लिए तो यही बहुत बड़ा चमत्कार है कि उसने जन मानस की विचार पद्धति को क्रान्तिकारी ढंग से बदल दिया ।

8. बसव और उनके समकालीन

हमने जो कहा है कि बारहवीं शती की सामाजिक-धार्मिक क्रान्ति बसव की क्रान्ति थी तो केवल यह रेखांकित करने के लिए कि वह इसका जाना माना नेता था और इसकी सफलता का अधिकांश श्रेय उसी को जाना चाहिए। दूसरी तरह से कहें तो और भी नेता थे जिनके वजनदार सहयोग के बिना क्रान्ति को वह सफलता न हासिल होती जो कि हुई। इसलिए क्रान्ति के सारस्वरूप और उसके कर्णधार (बसव) को समझने के लिए बसव के इन समकालीनों के जीवन की कुछ जानकारी जरूरी हो जाती है।

बसव को अपने बचपन में माता-पिता का भरपूर प्यार मिला। किन्तु यह हैरानी की बात है कि उपनयन के कांड ने जो कटुता की भावना पैदा कर दी वह बसव के मन में माता-पिता के मरने तक कायम रही। अपने परवर्ती वचनों में बसव ने माता-पिता से नाता तोड़ लिया और यह कहना शुरू किया कि वह चन्नय्या के नौकरों की अवैध संतान है। एक वचन में उसने कहा "मत कहो कि मैं अनाथ हूं। मैं बाण, मयूर और कालिदास[1] का वंशज हूं; कक्कया और चन्नय्या ने मेरा पालन-पोषण किया।"

कभी भी उसने नहीं चाहा कि उसे उसके माता-पिता और उनकी जाति के बारे में स्मरण दिलाया जाए।

अपनी वय:सन्धि में माता-पिता और बांधवों के जिस स्नेह से वह वंचित रहा उसकी अभाव पूर्ति मंगलिवेडा और कल्याण में उसके मित्रों और सहयोगियों ने कर दी। उसका अपने लोगों में सहज विश्वास था। उसने कह रखा था कि देह पर लिंग धारण करने वालों की ईमानदारी की परख का सवाल उसके मन में कभी नहीं आयेगा!

बायें हाथ में खड़ग और दायें में मांस
और उनकी जिह्वा पर ताड़ी का पात्र
होने दो, किन्तु यदि गरदन में ईश्वर है तो
मैं उन्हें लिंग ही पुकारूंगा, मैं उन्हें

1. सभी वीरशैव कवि इन तीनों कवियों की महान् शैव के रूप में प्रशंसा करते हैं।

'संग' पुकारूंगा
हे कुदालसंगमेश्वर, मैं उन्हें पुकारूंगा
लिंगमुख ।

उसका मुख्य सरोकार यह जानना था कि वीरशैव है या नहीं। बसव का कहना था कि उनकी निष्टा के बारे में जानने का भार उसने देवताओं के ऊपर छोड़ रखा है। इस दृष्टिकोण की ताईद करना हमारे लिए मुश्किल होगा। एक आदर्शवादी के रूप में उसने सामाजिक बुराइयों की ही नहीं बल्कि अपने लोगों की भी आलोचना की है। एक व्यवहारकुशल व्यक्ति के रूप में उसका अपने अनुयायियों पर सहज विश्वास था और वह उनकी कथनी पर भरोसा रखता था।

सब तरह के, सब वर्गों के और भिन्न-भिन्न बौद्धिक स्तर वाले लोग उसके पास पहुंचते थे। उनमें सच्चे भक्त और साधक, जिज्ञासु संदेहशील व्यक्ति ही नहीं बल्कि चोर और आवारा भी शामिल थे।

पहले हम उन सामान्य लोगों पर दृष्टिपात करें जो उसके घर आते थे, उसके बाद साधकों और आंदोलनों के नेताओं को देखें।

महादेवि शेट्टी नामक कलिंग (आधुनिक ओडिसा) का व्यापारी भी एक भक्त था। किसी ने उसके सामने इस प्रकार का गीत गाया : "जब लोग मुझसे दान नहीं मांगते तो जान पड़ता है कि मैं दरिद्र व्यक्ति हूं। मेरे ऊपर शाप आये यदि मैं मांगा हुआ दान न दे पाऊं।" वह इस प्रकार की शपथ सुनकर हैरान हुआ और निश्चय किया कि छकड़ा भर सोना, मोती और मूंगा मांगकर बसव की परीक्षा ली जाय। वह कल्याण आया और उसने बसव को खरे सच्चे भक्त के रूप में पाया तो लज्जित हो गया। तब भी वह बसव को परखना चाहता था। इस द्वन्द्व में घिर कर उसने बसव से छकड़ा भर अनाज मांगा। बसव हंसा और उसने शेट्टी को ढेर सम्पत्ति प्रदान की।

बसव की भलमनसाहत का फायदा उठाने वाले भी थे। शिवभक्तों के वेश में कुछ चोरो ने उसके घर अतिथि सत्कार का लाभ उठाया। लिंग के बजाय उन्होंने छोटे-छोटे बैगन कपड़े में बांधकर लटका रखे थे। पूजा के समय उनसे लिंग निकालने को कहा गया तो वे सकते में आ गये और बगलें झांकने लगे। बसव को तभी पता चल गया कि ये जालसाज हैं, तब भी उसने उनको सम्मान दिया। उनको पश्चाताप हुआ और बसव के चमत्कारी प्रभाव में आकर उसके अनुयायी हो गये।

एक दूसरे अवसर पर, भक्तों का वेश धर कर कुछ चोर उसकी चरागाह में आये और उसके पशु चुरा ले गये। चरवाहे ने आकर उससे प्रार्थना की कि

आदमी भेजकर पशु ले आये जायं। बसव की प्रतिक्रिया एकदम अबूझी थी। उसने कहा कि 'भक्त के वेश में चोर हो ही नहीं सकता' और सोचा कि पशु सही लोगों के हाथ चले गये है। उसने भावुक हो एक वचन गाया :

मै याचना करता हूं मत कहो
कि चोर ले गये है गो धन।
'मत चिल्लाओ" मैं याचना करता हूं
वहां दूध पीने वाला भी ईश्वर है।
यहां दूध पीने वाला भी ईश्वर है।
कुदालसंगमेश्वर तो वही है—एक

उल्टे उसको बछड़ों बछियों की चिंता हो गई। गायों को वापस मंगाने के बजाय उसने खुशी के आंसुओं के साथ बछड़ों को उनकी माओं के पास भेज दिया (किंतु कहानी यह नही बताती कि बछड़े बछियो का स्वागत करने के लिए वहां चोर थे भी कि नहीं।

कल्याण में एक प्रेमी रहता था जो भक्त भी था। उसकी प्रेमिका नील-लोचने के कानों की बालियों से ऐसी मोहित थी कि वह अपने प्रेमी को वही लाने के लिए प्रार्थना करती थी। एक रात वह बसव के घर में घुसा और उसने वे बालियां उतारने की कोशिश की। नीललोचने जाग गयी और 'चोर! चोर!' चिल्लाने लगी। बसव भी जगा और क्या देखा कि सामने एक भक्त खड़ा कांप रहा है। उसने चोर को नहीं अपितु अपनी पत्नी को डांटा कि श्रीमान् को कान की बालियां उतारने का कष्ट क्यों करवा रही है। ऐसा विश्वास था बसव का भक्तों में। नीललोचने ने खुशी-खुशी कान की बालियां उतार कर दे दी। वह तथा उसकी बहन अपने पति के लिए कुछ भी त्याग करने को उद्यत रहती थीं।

इन घटनाओं से बसव के यहां आने वालों की एक झलक मिल जाती है। उनमें अनेक सीधे, निर्धन, निरक्षर, अज्ञानी और लोभी थे। निस्संदेह क्रांति उन्हीं के उत्थान के लिए थी और उन्हें दूर रखने का सवाल ही नहीं था। फिर साधक और ज्ञानी थे जो उसके पास आते थे। उन्होंने बसव से काफी कुछ सीखा और बसव को सिखाया भी। इन प्रबुद्ध व्यक्तियो ने आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और इसकी सफलता में उनका अंशदान है।

उनमें अग्रणी था अल्लमप्रभु अथवा प्रभुदेव। वे कर्णाटक में हुए महानतम रहस्यसाधकों में एक थे। उसका जन्म शिमोगा जिले के बल्लिगवे स्थान पर हुआ। उसका प्यार कमलाते नामक नवयुवती से हो गया और उसके साथ खुशी से कुछ साल बिताए। अभी उसका प्रेम और खुशी का स्वप्न संसार बरकरार ही था, कमलाते तीव्र ज्वर से चल बसी। उसकी मृत्यु से वह गमगीन और

दयनीय हो गया। यहीं से उसकी जिंदगी ने नया मोड़ लिया। उसने कमलाते के प्रति अपने प्रेम को ईश्वर के प्रति बदलने के लिए संघर्ष शुरू किया। अनेक वर्षों के द्वन्द्व, संघर्ष और घनघोर साधना के पश्चात् उसने आत्मानुभूति की तथा समझदार और ज्ञानी हो गया।

अब ज्ञानी अल्लम जगह जगह घूमता हुआ संतों से मिलता और उनके साथ अपने अनुभवों की चर्चा करता। उसने उनको ईश्वर लाभ का मार्ग बताया। उसने रोती हुई मुक्तायक्का को सांत्वना दी, जिसका प्यारा भाई चल बसा था और उसे साधिका बना दिया। वह गोग्याय्या और सिद्धर्म जैसे लोगों से मिला और उनको लिंग पूजा का सही अर्थ समझाया। सिद्धर्म के मतांतरण का मुख्य श्रेय अल्लम को ही जाता है। सिद्धर्म के 'मतांतरण' के फलस्वरूप वीरशैवमत का प्रभाव तेजी से बढ़ा (क्यों ? सिद्धर्म जैसा कि हम देखेंगे, बहुत ही लोकप्रिय और प्रभावशाली सामाजिक कार्यकर्त्ता था तथा उसके अनुयायियों की विशाल संख्या थी)। अल्लमप्रभु सिद्धर्म को कल्याण लाया तथा आंदोलन के तमाम नेताओं से मिला। बसव समेत सभी नेता उसे अपना आध्यात्मिक गुरू मानते थे। उसी से साधना संबंधी निर्देश पाते थे। निस्संदेह बसव के घर होने वाली चर्चाओं में वह केन्द्रीय व्यक्ति था। इनमें भाग लेने वाले अल्लम के गंभीर ज्ञान और तीव्र मेधा के लाभ उठाते थे। कहा जाता है कि सर्वसम्मति से उसको शून्य[1] सिंहासन पर आसीन होने का अधिकारी चुना गया था—इससे रहस्यानुभूति के मामले में उसकी उत्कृष्टता के बारे में बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

उसके वचन सौंदर्यपूर्ण है पर सरल नहीं है। उसके वचनों के एक भाग का नाम है बेदगिन वचन। बेदगु का मतलब है लालित्य, नवीनता और असाधारणता। ये वचन विरोधाभास वाले हैं : आम पाठक के लिए इनका एक मतलब है किंतु साधनापथ में दीक्षित के लिए इनका दूसरा ही मतलब है। इन वचनों की भाषा की तुलना तांत्रिक रचनाओं की संधा भाषा से की जा सकती है।

अक्कमहादेवी शायद कर्णाटक की सबसे बड़ी संत हैं और उसकी तुलना राजस्थान की मीराबाई और तमिलनाडू की अन्दल से की जा सकती है। उसका जन्म बल्लीगवे के पास एक छोटे कस्बे में हुआ। बाल्यकाल में ही उसका ईश्वर से अनुराग हो गया और आयु बढ़ने के साथ उसने अनुभव करना शुरू कर दिया कि उसका विवाह शिव से हुआ है तथा वह शिव की पत्नी है। कस्बे का स्वामी कौशिक नामक एक सामंत उससे विवाह रचाना चाहता था। शुरू में तो उसने

1. साफ ही शून्य सिंहासन प्रतीकात्मक प्रयोग है। इसका प्रतीकार्थ है वह ऊंचाई जो कोई साधक पा सकता है। वीरशैव मत के अनुसार परमात्मा एक साथ शून्य भी है और पूर्ण भी।

दो टूक मना कर दिया किंतु उसकी धमकियों के आगे झुकना पड़ा। कुछ समय के लिए वह कौशिक के महलों में उसकी पत्नी के रूप में रही किंतु मनसे वह अपने को शिव की पत्नी ही मानती थी। जब उसने अनुभव किया कि यह दोहरी जिंदगी संभव नहीं है तो उसने दाम्पत्य सूत्र तोड़ दिया और महल से बाहर आ गयी। तब से लेकर वह ईश्वर और उसके बारे में अपनी दिव्य भावाकुलता के विषय में गाती हुई जगह जगह घूमती रही।

पतित्याग के दु:साहस भरे काम को शायद कईयों ने नहीं सराहा। अल्लम तथा दूसरे संतों के मन में अक्कमहादेवी के प्रति बड़ा आदर था तथा वे संसार को बताना चाहते थे कि अक्कमहादेवी ईश्वर की सच्ची भक्त है। अक्कमहादेवी कल्याण पहुंची तथा बसव के घर में लोगों से मिली। अल्लम ने कई तीखे सवाल पूछे और उसने संतोषजनक उत्तर दिये। उसके जवाबों से लोगों का समाधान कर दिया कि ईश्वर के प्रति सच्चे अनुराग के कारण ही उसने विवाह जैसी प्रतिष्ठित सामाजिक संस्था को लात मारी है। बसव ने ईश्वर से उसके विवाह का समारोह अपने घर में किया और लगता है कि वही इसे औपचारिकता मिली। कल्याण से वह श्रीशैल (आंध्र प्रदेश) गई और वहीं अपने स्वामी से एक हो गई।

अक्कमहादेवी ने कुछ सुन्दरतम गीतात्मक वचनों की रचना की है। उनसे उसकी आध्यात्मिक यात्रा के कष्टों और उथल-पुथल का पता चलता है। जहां तक उनकी श्रेष्ठता का प्रश्न है वे बसव के वचनों के बाद दूसरे नम्बर है।

सिद्धर्म बारहवी शती के जाने माने व्यक्तियों में एक था। वह ईश्वर भक्त था और शायद लाकुलीश-पाशुपत शैव सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ था। वह उत्साही सेवा भावना वाला सामाजिक कार्यकर्त्ता था। वह एक मठ का मठाधीश था और उसके शिष्यों की विशाल संख्या थी। उसकी जगह सोन्नातिगे (महाराष्ट्र का शोलापुर) नामक एक छोटा गांव था। जिसे उसने बड़ा नगर बना दिया था। उसने वहां विशाल मदिर बनवाया और शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित की। दूसरी जगहों में भी उसने अनेक मदिर बनवाये। उसने शोलापुर में 'मानवों, पशुओं, कीटों और सभी' के भले के लिए एक विशाल जलाशय का निर्माण करवाया जो आज तक कायम है। वह 'हर आंख के हर आंसू' को पोंछ डालना चाहता था। वह दयालु व्यक्ति था जिसने कई निर्धनों को ऋण से मुक्त करवाया। वह अपने मंदिर में सामूहिक विवाह करवाता था जिससे गरीब लोग न्यूनतम खर्चे से विवाह का भार वहन कर पाते थे। उसके समकालीन उसे प्रभु ही मानते थे। अल्लमप्रभु उसका समाधान और वीरशैव धर्म में मतांतरण करने में सफल हुआ। अल्लमप्रभु के निर्देश में उसने आध्यात्मिक साधना शुरू की और

अपने बनाये जलाशय के मध्य में बने एक छोटे से बाड़े में परम शिव से ऐक्य प्राप्त किया।

सकलेश मदरस बसव का ज्येष्ठ समकालीन था। वह श्रीशैल से आया था और उसने कुछ समय कल्याण में बिताया। वह महान संगीतकार था और रावणहस्त, किन्नरवीणा, कच्छपवीणा और साटंगवीणा जैसे वाद्य बजाता था। वह वचनों की रचना भी करता था। बसव सकलेश मदरस का प्रशंसक था और बसव ने उसके कई विचारों और वाक्यांशों को अपनाया भी।

मदीवल मचय्या एक धोबी था। वह कट्टर वीरशैव था। वह कल्याण में रहने वाले शिवभक्तों के कपड़े धोता था और यह उसका कायक था। वह बहुत जोशीला व्यक्ति था तथा राजा से भी नहीं डरता था। जैसे कि एक कहानी है उसने राज-परिवार के कपड़े धोने से इंकार कर दिया। राजा उसे दंडित करना चाहता था पर असमर्थ रहा। अछूतों से अपेक्षा रहती थी कि नगर में प्रवेश करते हुए अपने आगमन की घोषणा करें। एक तरह से प्रतिकार करते हुए मच्चया नगर की गलियों में चलते हुए घंटी बजाता था और घोषणा करता था कि यदि किसी भावी ने इसे छुआ तो सजा पायेगा। एक समय बसव को चेतना हुई कि वह दानी है और शेष लोग पात्र हैं। तब मच्चया ही था जिसने उसकी आलोचना की और उसे ठिकाने लगाया। इसी तरह के स्वभाव और चरित्र वाला एक और व्यक्ति था अम्बीगर चौदय्या। वह मल्लाह था इसकी गवाही उसके वचनों से मिलती है। उसने अपने चारों तरफ के समाज की कटु आलोचना की है। वह अपनी बिरादरी के लोगों को भी उनके दोषों के लिए बख्शता नहीं था। बसव के घर होने वाली बहसों में मचय्या और चौदय्या दोनों ही हिस्सा लेते थे।

मोलीगेय मरय्या, बसव का निकटतम सहयोगी था। किस्सा है कि वह पहले काश्मीर का राजा था तथा बसव और उसकी भक्ति की कीर्ति सुनकर कल्याण आकर बस्ती के बाहर रहने लगा। उसने लकड़ी बेचने का कायक अपने जिम्मे लिया था। उसकी रचनाओं में आता है कि वह पहले राजा था और ऐश तथा आराम का जीवन बिताता था। उसने पत्नी महादेवी (रानी महादेवी के नाम से भी प्रसिद्ध) के साथ कल्याण में स्वेच्छा से निर्धन का जीवन चुना। सुबह जाकर वह लकड़ी काटता और फिर बेचता। ये पति-पत्नी कभी अपनी गरीबी का रोना नही रोते थे और सुखी संतुष्ट थे। वे शिवभक्तों को बुलाते और उन्हें अम्बली खिलाते। अम्बली आटे, लस्सी और नमक से बनने वाली लप्सी को कहते हैं। भक्त उसके घर की लप्सी को बसव के घर मिलने वाले व्यंजनों की तुलना में अधिक चाव से खाते। बसव मरय्या की आर्थिक सहायता करना चाहता था।

बसव एक बार उसके घर तब गया जब मरय्या घर पर नहीं था। उसने महादेवी का आतिथ्य ग्रहण किया और लौटते हुए मुद्राओं की थैली रख आया। जब मरय्या घर लौटा तो धन देखकर हैरान हो गया कि बसव दयार्द्र होकर धन छोड़ गया है। पति पत्नी ने धन स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह कायक की कमाई का नहीं था। मरय्या ने कहा "शिव ने हमारे ऊपर कायक की कृपा की है और हम संतुष्ट हैं। क्यों किसी के अहसान में रहें।" यह कहकर उसने अस्वीकार कर दिया। रानी महादेवी ने भी पति की भांति वचन रचे हैं। उसने भी उन दिनों को याद किया है जब वह रानी थी। इस जोड़े को आदर्श परिवार के रूप में देखा जाता था।

दुर्भाग्य से हम न तो इस राजपरिवार और न ही उनकी राजधानी मांडव्यपुर को काश्मीर में चिह्नित कर पाये है। यह मानना साधार है कि वे शायद हिमालय के दक्षिण के सव-लक्ष नामक इलाके से आये थे।

इसी प्रकार के दूसरे गरीब किन्तु सुखी परिवार में पति का नाम था अयदक्की और पत्नी थी लक्कम्मा।

बसव प्रतिदिन भक्तों को दान में कई द्रोण अनाज बाटता था। दान बांटने की प्रक्रिया में कई दाने गिर जाते थे और निरुपयोगी रहते थे। मरय्या भंडारे के निकट प्रतीक्षा करता और एक एक करके जमीन से दाने बीनता, घर ले जाकर पकाने के लिए पत्नी को सौप देता। लक्कम्मा उन्हें रांधकर, एक हिस्से को भक्तों में बांटकर बाकी अपने परिवार को खिलाती। अयदक्की शब्द का अर्थ है चुना हुआ धान और दाने चुनना ही उसका कायक था। बसव के घर होने वाली चर्चाओं में एक बार कायक पर विचार हुआ। यह कहा गया कि कायक मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति नहीं है। मरय्या ने ये शब्द सुने तो उसकी कायक में रुचि समाप्त हो गई और उसने उस रोज दाने नहीं बीने। लक्कम्मा गोष्ठी में आयी और उसने पति को शालीन तरीके से फटकारा कि वह अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठा है तब मरय्या भंडारे की ओर भागा, जरूरत से ज्यादा दाने इकट्ठे करके घर ले आया। फिर लक्कम्मा ने उसके लोभ की खातिर उसे फटकारा और यह कहते हुए फालतू दाने वापिस भिजवा दिये : "लालची राजा होते हैं, भक्त नहीं।" लक्कम्मा और मरय्या जैसे भक्तों ने अपने आचरण से कायक सिद्धान्त का आदर्श प्रस्तुत किया। और संसार को दिखाया कि "कायक स्वर्ग है" (कायकवे कैलास)।

एक अन्य भक्त था किन्नरी[1] बोम्मय्या जिसका पेशा था वीणा बजाना। उसे किन्नरय्यामी कहते थे। बसव को उससे कुछ स्नेह था और वे अच्छे मित्र

1. किन्नरी एक प्रकार की वीणा का नाम है।

बन गये। किन्नरय्या की कमजोरी थी प्याज। एक दिन वह बसव के घर प्याज लाया और छीलने लगा। घर लौटने पर बसव से उसकी तीखी गंध सहन नहीं हुई, वह चिल्लाया कि कौन है जो दूषित चीजें (अर्थात् प्याज) उसके घर लाया है। किन्नरय्या को इन शब्दों मे दुःख हुआ। वह कल्याण छोड़कर निकटवर्ती गांव में रहने लगा। बसव को इसकी सूचना मिली। उसकी किसी की भावना को आहत करने की नीयत नहीं थी और उसे यह घटना सालने लगी। किसी ने सुझाया किन्नरय्या का गुस्सा प्याज की वजह से था और प्याज से ही शांत करना चाहिए। बसव ने प्याजों का जुलूस निकाला। हाथी और घोड़ों को प्याजों से सजाया गया, लोगों ने प्याजों के हार और बाजूबन्द पहने, घरों और गलियों को प्याजों से सजाया गया। बसव ने स्वयं प्याजों की बड़ी सी माला पहनी। किन्नरय्या इस जुलूस से मुदित हुआ। आसानी से उसकी बसव से मैत्री फिर जुड़ गई।

बसव शिवभक्तों को अपनी आत्मा से अभिन्न समझता था। उसके चरित्र में इससे संबंधित एक रोचक कहानी है। एक दिन कुछ जंगम उसके घर आये। उनको सूचित किया गया कि बसव आराम कर रहे हैं और उनकी नींद में विघ्न नहीं डाला जा सकता। जंगम चले गये। और उनके साथ बसव की आत्मा भी कूच कर गयी। जब बसव की पत्नियां उसे जगाने पहुंची तो उन्होंने पाया कि बसव के प्राणपखेरू उड गये हैं। उनके त्रासपूर्ण शोकयुक्त रुदन सुनकर बसव के निकट सहयोगी दौड़ते हुए आये। उन्होंने सहज प्रज्ञा से समझा और पूछा कि जब बसव सोया हुआ था तो क्या कोई जंगम आया था? नौकरों ने बताया कि आये थे तो उन्होंने नौकरों को दौड़ाया कि जाओ और उनको ढूंढ़ कर लाओ। जंगमों के वापिस आते ही बसव उठकर बैठ गया। वह पूर्ववत् स्वस्थ था। उसे 'जंगम प्राणी' कहा जाता था। जंगम प्राणी से आशय है उस व्यक्ति का जिसके प्राण उसके शरीर में नहीं बसते बल्कि जंगमों में रहते हैं। इस तरह की कहानियां शायद बाद में जोड़ी गई हैं। इनका मकसद यह दिखलाना है कि बसव को अपने लोगों से अतिरेक में प्यार था। चन्नबसव बसव का भानजा था। वह बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति था। उसकी रचनाओं से हमें षट्स्थल के दर्शन का संपूर्ण और क्रमबद्ध विवेचन प्राप्त होता है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि बसव के अनुयायियों को अभिव्यक्ति की पूरी स्वतन्त्रता थी। उसके घर पर नियमित बैठकें होती थीं। इनमें भक्त ईश्वर के भजन गाते और आनन्दातिरेक में नाचते। ये सत्संग कभी कभी चर्चागोष्ठियों में परिवर्तित कर दिये जाते और धर्म सम्बन्धी विषयों पर विवाद होता (भूतपूर्व) उच्चवर्ण और भूतपूर्व (नीची) जातियों के लोगों में कोई भेद न

था, कोषाध्यक्ष की आलोचना मोची करता, नारियां अपने भाव पूरी आजादी से व्यक्त करतीं। वहां ईश्वर का स्वरूप, षट्स्थल, कायक का महत्त्व, देह पर लिंग धारण करने का महत्त्व, जाति समस्या, छोटे बड़े का सवाल, मतांतरण और पुनः मतांतरण आदि विषयों पर बातचीत होती। साधक अपने अनुभवों को दूसरों के अनुभवों से मिलाते और सहयोगियों का आध्यात्मिक विषयों में मार्ग दर्शन करते। इन गोष्ठियों को विविध नामों से पुकारा जाता : अनुभव गोष्ठी, महानुभाव प्रसंग और अनुभव मंडप आदि। ये गोष्ठियां इस आन्दोलन की अनोखी विशिष्टता थीं। यहां कई भक्तों को वचन रचने और गाने के लिए प्रेरित किया जाता था।

बसव जनता का आदमी था। वह लोगों को प्यार करता और उनसे घिरा रहना चाहता था। उसे अपनी शक्ति और प्रेरणा दो स्रोतों से मिलती थीं—परमेश्वर से और अपने लोगों से।

अद्भुत होगा यह देखना
मछली जल के बाहर जीले :
हे लिंग मुझे दो तुम
शरणों का नित्य संग :
हे सद्ईश्वर, यह मैं फैलाता हूं
अपनी चद्दर तुम्हारे आगे, मांगता हूं,
हे कुदालसंगमेश्वर।

वह जनसमुद्र में मछली के समान था और जनता के बिना नहीं रह सकता था। इसी का परिणाम था कि लोग उसे चाहते थे और पूरी निष्ठा से उसका अनुसरण करते थे।

9. अंतिम दिन

बसव द्वारा अपनी शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के अनथक प्रयास सफल हुए : उसके शिष्य बढ़ते गये और उन्होंने बसव का संदेश जनता तक पहुंचाया। दूसरे मतों को मानने वालों के लिए यह काफी घबराहट पैदा करने वाली स्थिति रही होगी। भय और ईर्ष्या से प्रेरित होकर उन्होंने बसव को नये सिरे से बदनाम करने की कोशिश की। इनके साथ राजसभा के वे अधिकारी भी शामिल हो गए जो धार्मिक और राजनीतिक कारणों से बसव से मतभेद रखते थे।

आइये बिज्जल के कोण से बसव और उसके आंदोलन को देखें। बिज्जल महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने चालुक्यों के सिंहासन पर कब्जा किया था। कब्जा करने की प्रक्रिया में शायद उसके जायज अधिकारी की हत्या भी कर दी थी। उसके अचेतन मन को पाप-भावना ग्रसे हुए थी। इसमें कोई हैरानी नहीं यदि वह सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाए जाने के विरुद्ध हो। अपने देश में सर्वसत्ता सम्पन्न सम्राट होने की वजह से वह नहीं चाहता था कि उसका अधिनस्थ व्यक्ति जननायक हो जाय। बसव की गतिविधियों ने इसके मन में ईर्ष्या और भय की भावना पैदा कर दी।

परम्परागत हिन्दू धर्म के धर्मशास्त्रों के अनुसार वर्ण व्यवस्था की रक्षा करना राजा के मुख्य कर्त्तव्यों में से एक है। उनका निर्देश है कि राजा ध्यान रखे कि वर्ण संकर (अर्थात् भिन्न वर्गों में परस्पर विवाह) न हो। बसव के विरोधी बिज्जल के सामने यही दलील पेश करते कि बसव के कार्य कलापों से वर्ण संकर हो रहा है और वह भी बिज्जल की आंखों के सामने। उन्होंने कहा कि बसव उस सब का मखौल उड़ा रहा है जो कुछ भी परम्परा में पवित्र है और यदि उसे दण्डित नहीं किया गया तो सनातनधर्म भग्नावशेष रह जायगा। उन्होंने उसके दिमाग में बैठाया कि राजा होने के नाते वह अपने कर्त्तव्य में चूक रहा है।

बिज्जल स्वयं परम्पराग शैवमत को मानता था और शिवपूजक था। बसव की मान्यताएं इस कदर परम्पराद्रोही थीं कि उसके संस्कारों को अग्राह्य थीं। इसके अलावा वह नहीं चाहता था कि वीरशैव धर्म के हाथों उसके सम्प्रदाय की पराजय हो।

कई बार बिज्जल और बसव में टकराहट हुई थी और उनके रिश्ते जो भी थे मधुर नहीं थे। वह इसको माफ नहीं कर सकता था कि बसव अछूतों से मेल मुलाकात रखता था और उनके साथ खाता भी था। दूसरी भी शिकायतें थीं। यदि बिज्जल के लिए बसव और उसके आदर्शवाद को पसंद करने के कारण थे तो उसको और उसके आदर्शवाद को नापसंद करने के भी ज्यादा बड़े कारण थे। तख्तापलट में बिज्जल के सहायक सामतों और मंत्रियों की बसव से अपनी शिकायतें थीं। इन तमाम बातों की वजह से बिज्जल उसकी क्रांति के विरुद्ध था।

बसव के मन में मालिक बिज्जल के प्रति कुछ सम्मान था किंतु व्यक्ति बिज्जल के प्रति नहीं। वस्तुत: राजाओं के प्रति ही उसके मन में सम्मान भावना नहीं थी। अपने एक वचन में बिज्जल ने कहा है कि 'गरीब घर में चौका बासन करने वाली नौकरानी, महलों की रानी से बेहतर है।' वह पूरी तरह से जानता था कि लोग बिज्जल के प्रति वफादार प्यार और आदर से नहीं अपितु भय के कारण हैं।

शिकारी खरहा मार कर लाता है
लोग उचित मूल्य देते हैं;
किंतु देश के मृत राजा को
कोई एक सुपारी न दे।
एक इन्सान की कीमत कम है
खरहे से, देखो।

राजाओं और उनके वैभव के प्रति बसव की घृणा कई वचनों में अभिव्यक्त हुई है।

वह जानता था कि बिज्जल उसे नापसंद करता है और यह भी जानता था कि देश के राजा को रुष्ट करके जीवित रह पाना टेढ़ी खीर है। उसके वचन में कई जगह बिज्जल का उल्लेख है पर कहीं भी सम्मान के साथ नहीं।

पहले देख चुके हैं कि बिज्जल बसव की ईमानदारी परखना चाहता था। अनेकदा उसने बसव का मजाक उड़ाने और मूर्ख सिद्ध करने की चेष्टा की। बाद के वीरशैवों ने अनेक कहानियों द्वारा बताना चाहा है कि कैसे बिज्जल उसे मूर्ख बनाने की कोशिश में खुद बेवकूफ बना। इसके बावजूद, बसव इस अनुचित अपमान को पी गया। किंतु वीरशैव समाज क्रोध से उफन रहा था और वह उस मौके की खोज में था जब अपने नेता के अपमान का बदला लिया जा सके। उनकी नजर में यह व्यक्तियों का आपसी झगड़ा न होकर सिद्धांतों का झगड़ा था। उनकी धारणा थी कि बिज्जल उनके धर्म और आंदोलन की प्रगति के रास्ते में रुकावट है।

इस भूमिका को ध्यान में रखकर बसव के जीवन के अंतिम दिनों में होने वाले घटना चक्र पर विचार करें।

कल्याण में जगदेव नामक एक अधिकारी था। बसव की शिक्षाओं से अभिभूत होकर वह वीरशैव बन गया। एक दिन उसने बसव और सहयोगियों को अपने घर खाने पर निमंत्रित किया। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। बसव आदि के आने से पहले उसने कुछ ब्राह्मणों को बुलाया और जिमाया। बसव को पता चला तो उसने जगदेव के यहां जाने से साफ इंकार कर दिया। जगदेव को अपने किये पर पछतावा हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि वह वीरशैवमत के एक शत्रु को प्रायश्चित स्वरूप मारेगा।

कल्याण में ही अल्लय्या और मधुवय्या नामक दो शिवभक्त रहते थे। जन्म से अल्लय्या अछूत था और मधुवय्या ब्राह्मण था। दोनों मित्र थे और बसव के अनुयायी थे। मधुवय्या अपनी लड़की की शादी अल्लय्या के लड़के से करना चाहता था। बसव ने अपनी सहमति दे दी थी और वीरशैव समाज की खुशी का छोर नहीं था। रूढ़िवादियों ने 'ऊंची जाति' वालों को 'नीच जाति' के व्यक्तियों के यहां खाते हुए तो देखा सुना था किंतु यह तो ऐसी बात थी जिसके बारे में सपने में भी नहीं सोचा जा सकता था। उनकी बेचैनी बढ़ गयी और उन्होंने बिज्जल से इस प्रस्तावित विवाह की शिकायत की। बिज्जल ने अल्लय्या और मधुवय्या को शादी रोक देने का आदेश दिया। उन्होंने मना कर दिया और तय किया कि कुछ भी हो जाय किन्तु यह शादी होकर रहेगी। बिज्जल का विवेक जवाब दे गया और उसने उनकी आंखें निकलवा दी।

इससे वीरशैवों में विरोध का तूफान उठ खड़ा हुआ। उन्होंने सोचा कि बिज्जल की इस कारवाई के बाद ऐसे ही या और अधिक क्रूरता के कारनामे सामने आयेंगे। वे आपस में कहते कि जब तक बिज्जल जीवित हैं न तो वे और न उनका धर्म ही सुरक्षित है। जल्दी में एक बैठक बुलाई गई और जगदेव को भी निमन्त्रित किया गया। जब उसे उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया गया तो वह बिज्जल का वध करने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। उसको यह काम सौंप कर बसव और उसके शिष्यों ने कल्याण छोड़ दिया। एक जत्था बसव के नेतृत्व में कुदालसंगम चला गया और चेन्नबसव के नेतृत्व में दूसरा जत्था उलिवे (कर्णाटक के उत्तरी कनारा जिले में एक जगह) की ओर।

जगदेव घर पहुंचा तो उसकी मां ने खाना परोसने से इंकार कर दिया। उसने कहा जब तक प्रतिज्ञा अधूरी है, उसे कुत्ते की तरह समझा जायगा। उसने आंगन में उसका खाना रख दिया। जगदेव बहुत भूखा था—उसने वहां से उठा कर खाया। बसव के दो शिष्य मोल्ले और बोम्मा भी जगदेव के साथ हो

लिए। शाम का समय था। बिज्जल अच्छी तरह से प्रकाशित राजसभा में बैठा था। लोग भेंट और सम्मान प्रस्तुत कर रहे थे। जगदेव और साथी राजसभा के कक्ष में दौड़े आये और उन्होंने बिज्जल को दबोच लिया तथा मौत के घाट उतार दिया। मारते हुए यह भी घोषणा की कि धर्म का शत्रु मर चुका। (लगता है यह घटना 1167 ई० की है क्योंकि वही तो बिज्जल के शासन का अंतिम वर्ष है)। जगदेव ने अपने को भी मार डाला और शेष दो शायद पकड़े गये तथा बाद में कइयों के साथ वे मार डाले गये।

बिज्जल की सेना ने कल्याण छोड़कर जाने वाले दोनों जत्थों का पीछा किया। लगता है कि सेना की चेन्नबसव के नेतृत्व वाले जत्थे से मुठभेड़ हुई। अन्ततः चेन्नबसव अपने लोगों के साथ उलिवे पहुंच ही गया।

इस बीच बसव कुडालसंगम पहुंच ही चुका था। उसका मन अशांत था—वह शांति चाहता था। वहां उन्हीं नदियों का संगम था, वही खेत थे और वैसा ही मनोरम दृश्य था। इससे निस्संदेह उसे कुछ शांति मिली। मगर उसे लगने लगा कि उसका ध्येय पूरा हो गया है और संघर्ष करते रहने की जिम्मेदारी उसके सहयोगियों की है। वह जानता था कि उसका अन्त समय आ गया है—वह मरना चाहता भी था। उसकी पत्नी नीललोचने को कल्याण ही छोड़ दिया गया था। कारण हमें ज्ञात नहीं। बसव ने अपने एक साथी अप्पन्ना को कल्याण भेजा कि नीललोचने भी कुडालसंगम आ जाय। अप्पन्ना ने कल्याण में नीललोचने को कहा, "बसव ईश्वर से मिलने जा रहा है" और वह उसकी उपस्थिति चाहता है। हैरानी की बात है कि उसने कुदालसंगम जाने से मना कर दिया और कहा कि ईश्वर सब जगह है और वह कल्याण में ही उससे मिलेगी। लगता है कि बसव बिज्जल के बाद कुछ ही समय जीवित रहा। उसने संगम में अंतिम सांस 1167—68 ई० में ली। 'लहर ज्यों महासागर में और झोंका हवा में' बसव अनंत में लीन हो गया। जैसा कि मचाय्या ने कहा "वह प्रकाश से आवृत हो गया और शून्य[1] हो गया। निधन का समाचार पाकर नीललोचने ने यह कहकर विलाप किया : "अब वह अशरीरी हो गया" और उसने भी बसव का अनुकरण किया। शरणों ने कल्याण नगर की तुलना भक्ति रूप तेल वाले दीपक से की—उन्होंने कहा कि इस दीपक ने अनेकों को रोशनी दी। किंतु अब दीपक टूट गया। तेल बिखर गया किंतु दीपप्रभा दिव्यप्रभा में मिलकर एक हो गई।

बिज्जल की मृत्यु से कल्याण नगरी में भारी उथल-पुथल हुई और सच ही उसकी चूलें हिल गईं। बिज्जल की जगह उसके लड़के मुरारि सावि देव ने ली।

1. वीरशैवमत के अनुसार परमात्मा निर्गुण भी है और सगुण भी। अक्सर उसे शून्य कहा जाता है जो पूर्ण की ही दूसरी संज्ञा है।

किन्तु उसे दुतरफा विरोध का सामना करना पड़ा। बसव के अनुयायियों से जिन्हें वह सजा दे रहा था और मृत चालुक्य राजा से सहानुभूति रखने वालों से। उसने अधिक देर शासन नहीं किया और जल्दी जल्दी उसके चार भाई भी गद्दी पर बैठे। बिज्जल ने तैल III को बाहर किया था। उसका लड़का सोमेश्वर चतुर्थ अभी तक जीवित था। उसने बर्मा नामक योग्य सेनापति के नेतृत्व में सेना खड़ी की और अपने पिता का राज्य 1184 ई० में वापिस हासिल करने में कामयाब हो गया। इस तरह थोड़ी ही अवधि में कलचुरी साम्राज्य का अंत हो गया। किंतु दुर्भाग्य कि चालुक्य साम्राज्य भी ज्यादा देर नहीं टिका। 1190 ई० में देवगिरि के यादवों ने इसके उत्तरी भाग पर कब्जा कर लिया और डोर समुद्र के होयसालों ने इसके दक्षिणी भाग पर।

बसव ने दाय के रूप में निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं का समूह और उससे भी बढ़कर महान विचार छोड़े। चन्नबसव और मदीवल मचय्या जैसे कार्यकर्त्ताओं ने बसव के काम को आगे बढ़ाया। बसव ने सामाजिक दृष्टिकोण में मूलगामी परिवर्तन ला दिया था और इस तरह लोगों के दिमाग में क्रान्ति के बीज डाल दिये थे। शीघ्र ही क्रान्ति का फल प्रकट हुआ। उदाहरण के लिए तेरहवीं शती के क्रान्तिकारी कवि हरिहर और राघवांक बसव तथा सहयोगियों से प्रेरणा प्राप्त करते थे। वे क्रान्ति की सन्तानें थीं। किन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि वीरशैव मत भी शेष धर्मों की भांति एक संगठित सम्प्रदाय में बदल गया। इसमें भी वही हठवादिता, अनुक्रम और संस्थाबद्धता आ गयी। निस्संदेह बाद में भी इसे लोकप्रिय बनाने के प्रयास होते रहे किन्तु वह संगठित धर्म का प्रचार ज्यादा था, सामाजिक आंदोलन का कम। बसव ने अपने शिष्यों को मंदिर जाने से रोक दिया था। उसने नारियों को आगे आकर सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित होने को प्रेरित किया था। उसके उत्तराधिकारियों ने इन तथा ऐसी शिक्षाओं की उपेक्षा कर दी। किंतु वह दूसरा प्रसंग है जो यहां प्रासंगिक नहीं है।

बसव की मृत्यु विवाद का मुद्दा रही है। यह तर्क दिया जाता है कि बसव ने बिज्जल के वध के लिए सहमति नहीं दी होगी क्योंकि उसी ने यह कहा था : "दया किसी भी धर्म की कुंजी है।" कुछ का कहना है कि बिज्जल का वध बसव के ऐसा न करने के आग्रह के बावजूद हुआ था। कुछ लोगों के मत में इस कांड से बसव का कोई भी वास्ता न था बल्कि यह एक राजनीतिक हत्या थी और हत्यारा वीर शैव था ही नहीं।

बिज्जल और बसव के बीच कोई प्यार नहीं बचा था। वीरशैव मत शिवभक्तों और धर्म के प्रति किए गए अन्याय के प्रतिकार की वकालत करता है, व्यक्ति को अन्याय का यथासंभव विरोध करना चाहिए, अन्यायकर्त्ता

को दंड मिलना चाहिए, उसका वध होना चाहिए और यदि सम्भव न हो तो उस जगह का त्याग कर देना चाहिए। बसव और सहयोगी चन्देश आदि की कहानियों का विश्वास ही नहीं करते थे बल्कि इसे सराहते भी थे। कहा जाता है कि एक चन्देश ने भेड़ों की लीद का ढेर करके पूजा शुरू की क्योंकि उसके भोले दिमाग में वह ढेर शिव की ही प्रति मूर्ति था। किन्तु उसके पिता ने इस शिवलिंग को आदर देने से मना कर दिया। और चन्देश को इस पर इतना क्रोध आया कि उसने अपने पिता की हत्या कर दी। सैद्धान्तिक रूप में ऐसी धार्मिक कट्टरता और जोश को स्वीकार किया जाता था मगर व्यवहार में अक्सर नहीं लाया जाता था। एक अपवाद को छोड़कर पहले के सभी आख्यान लेखकों ने जगदेव और उसके मित्रों को दोष-मुक्त माना है; इतना ही नहीं उसे यह कहकर गौरवमंडित भी किया है कि उसके इस कृत्य ने धर्म की महान सेवा की है।

कुछ समय के लिए कल्याण धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र नहीं रहा। अप्रत्यक्ष तौर पर इसने धर्म के प्रचार में सहायता ही की है। कल्याण में जमें हुए नेता देश के भिन्न भागों में जाकर बस गये। उन्हीं के साथ नए आदर्शों और विचारों ने भी नई जगहों की यात्रा की।

✱

★

10. कवि के रूप में बसव

बसव की ख्याति सामाजिक और धार्मिक सुधारक के रूप में ही नहीं है बल्कि साहित्यकार के रूप में भी है। सम्भवत: कन्नड़ में वचनों का वह सर्वश्रेष्ठ लेखक है। कुछ का मत है कि कन्नड़ में 'वचन' की परम्परा उसी ने आरम्भ की है। यह सही नहीं है। वचन रचने वाला वह पहला नहीं था। ग्यारहवीं शती के मध्य में देवर दसीमय्या ने साहित्यिक स्तर के वचन रचे थे। बाद में रहस्यवादी सन्तों और सुधारकों ने बारहवीं सदी में वचन को साहित्यिक विधा में बदला। इनमें बसव का स्थान सर्वोपरि है।

कन्नड़ साहित्य का प्रामाणिक इतिहास नवीं शती से शुरू होता है। दसवीं शती में पम्प और रन्न जैसे महान् कवियों ने चम्पू[1] विधा में लम्बे आख्यानों की रचना की है। चूंकि इन कवियों ने उस समय की व्यवहार भाषा का माध्यम चुना इसलिए ये अपने अधिकांश समकालीनों की पहुंच के भीतर थे। तथापि समय के साथ, ग्याहरवीं शती के आरम्भ में भाषा में परिवर्तन आया। पम्प और रन्न की भाषा अब बोलचाल की भाषा नहीं रही थी। इसे पुरानी कन्नड़ कहा जाने लगा। ग्यारहवीं शती के कवि पम्प और रन्न को आदर्श मानते थे। भाषा के बदलाव के बावजूद, वे मध्य कन्नड़ की जगह प्राचीन कन्नड़ को ही अपनी रचना का माध्यम बनाते थे। परिणाम यह हुआ कि ग्यारहवीं और बारहवीं शती के चम्पू काव्य केवल पंडितों द्वारा ही ग्राह्य थे। काव्य पांडित्य प्रदर्शन का जरिया हो गया, भाषा पंडिताऊ और अधिकाधिक संस्कृतनिष्ठ होने लगी।

बसव का आंदोलन साधारण व्यक्ति के लिए था, न कि परिष्कृत और पंडित के लिए। आंदोलन के नेता जनता को शिक्षित करना और निर्देश देना चाहते थे। इसलिए यह स्वभाविक ही था कि वे साधारण जन की भाषा का इस्तेमाल करते। बसव और सहयोगियों ने उस कन्नड़ का प्रयोग किया है जो शिक्षित जनों के बोलचाल के मुहावरे के करीब है। उनकी रुचि जनता को

1. गद्य पद्य मिश्रित काव्य को चम्पू कहा जाता है।

सिखाने और राह सुझाने में ज्यादा थी न कि गिने चुने लोगों के लिए साहित्य रचने में। परिणाम है कि उनमें से किसी ने कविता नहीं लिखी। उन्होंने चम्पू विधा का पूरा बहिष्कार किया और वचन विधा को अपनाया। मूलतः वचन साहित्य कोटि में हैं भी नहीं, परंतु उनमें से अनेकों में उत्तम श्रेणी की साहित्यिकता है।

वचन का अर्थ है गद्य और चम्पू आख्यान में इस्तेमाल किये जाने वाले गद्य को ही आरंभ में वचन की संज्ञा दी जाती थी। किंतु वीर शैवों की भाषा न तो गद्य है और न ही पद्य। यह काव्यमय गद्य है जिसकी तुलना• वॉल्ट विटमैन के 'लीवस ऑव ग्रास' से अथवा रवीन्द्रनाथ के गीतांजलि से की जा सकती है। वचन में एक सुविधा है कि इसकी रचना सरलता से हो सकती है। भाषा सरल थी, चरण, यदि और अनुप्रास आदि नियमों का अभाव था। इसलिए पंडित ही नहीं साधारण लोग भी इस माध्यम से अपने को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कर सकते थे। बसव की रचनाओं को वचन साहित्य का आदर्श माना जाता है। यद्यपि वचन छन्दमय नहीं हैं किंतु वचन को विषममात्रिक पंक्तियों में व्यवस्थित किया जा सकता है। एक वचन में तीन से लेकर बीस या पैंतीस पंक्तियां हो सकती हैं : पंक्तियों की संख्या की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। प्रत्येक वचन के अंत में लेखक अपना विशिष्ट अंकित संजो देता है जिससे उसकी रचना का प्रमाण भी हो जाता है। बसव का अंकित था, 'कुदालसंगम'—उसका इष्ट देव। चन्नबसव ने अपना अंकित रखा था कुदाल चन्न संगम, स्पष्ट ही यह बसव के अंकित से प्रेरित है।

कई अंकित रचनाकारों के गुजर करने के धंधों के अभिव्यंजक हैं। बसव द्वारा रचित वचनों की संख्या चौदह सौ के लगभग है। प्रतिवर्ष नई पांडुलिपियों के प्रकाश में आने से नए वचन भी मिल रहे हैं। उसके वचनों को मोटे रूप से कुछ शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है : कुछ का स्वरूप शुद्ध रूप से नीति शिक्षा देने का है; कुछ केवल सामाजिक आलोचना से सरोकार रखते हैं; कुछ आत्मालोचनापरक हैं तथा आन्तरिक द्वन्द्व को प्रकट करते हैं; बहुत से रहस्यानुभूति अभिव्यंजक हैं। अधिकांश किसी वर्गीकरण में समेटे जाने से परहेज रखते हैं। हमारी समझ में कई बिल्कुल स्वतः स्फूर्त हैं और किसी घटना से उत्प्रेरित हैं। यह सच है कि कई वचन सपाट रूप से गैर साहित्यिक हैं मगर ये कम ही हैं।

यह श्रेय बसव और उसके सहयोगियों को ही जाता है कि उन्होंने कन्नड़ साहित्य में गीतात्मकता को अवतरित किया। इससे पहले के कवियों ने पौराणिक कथानकों पर दीर्घ आख्यानों की रचना की है। अपने जीवन और प्रकृति के

विविध अनुभवों को इनमें पिरोने का कम ही अवकाश था। इससे हटकर, बसव की रचनाएं भाव और रूप दोनों दृष्टियों से गीतात्मक हैं।

पहले कहा जा चुका है कि वचन एक प्रकार का काव्यमय गद्य है। उन्हें संगीत वाद्यों की संगत में गाया जाता था। पहले के कई लेखकों ने वचनों को गीत भी कहा है और ये गीत अक्सर संगीत से योजित किये जाते थे। मसलन, तेरहवीं शती के राधवांक नामक कवि ने बताया है कि सिद्धर्म के वचन, उनके शिष्य शुद्ध भैरवी राग में गाते थे। कहा जाता है कि अल्लम जगह-जगह घूमते हुए दंडिगे नामक तन्त्रीवाद्य बजाते हुए अपने गीत गाया करता था। पंद्रहवीं शताब्दी के विद्वान कल्लमथड प्रभुदेव ने वचनों पर टीका लिखते हुए बहुत सही परिभाषा दी है: वचन शिवसुख (रहस्यानुभूति का आनन्दातिरेक) के अनुभव का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है।

हमने पहले देखा है कि कुछ स्थितियों में बसव की प्रतिक्रिया कैसी होती थी, मसलन गायों को चुरा लिये जाने पर। वह संवेदनशील और भावुक था। हमारे जैसों के लिए महत्वहीन घटनाएं, उसमें प्रबल संवेग उत्पन्न कर देती थी जो उसको विवश कर भाषा का रूप लेकर अभिव्यक्त हो उठते थे। उसके कई वचन इसी प्रकार के भाव-विस्फोट हैं।

बसव जीवन और प्रकृति का कुशल निरीक्षक था। उसके कई बिम्ब ताजे और मौलिक हैं। उसके वचनों में पशु, पक्षी, वनस्पति और कीट जगत् से लिये गये असंख्य बिम्ब हैं। नाग के फैले हुए फन के नीचे आराम कर रहे मेंढक का बिम्ब अथवा धीरे धीरे सांप द्वारा निगले जाते मेंढक की उड़ते हुए कीड़े को पकड़ने की कोशिश का बिम्ब मानवीय त्रासदी को अभिव्यक्ति देता है: मनुष्य अनुक्षण काल की छाया में जी रहा है और धीरे धीरे उस ओर खिंच रहा है मगर अपने पर बीत रही से बेखबर है। यह निराशावादी लग सकता है किंतु बसव कभी निराशावादी नहीं रहा। उसे इस संसार की सत्यता में विश्वास था और साथ ही शायद बड़ी सच्चाई यानि ईश्वर की दुनिया में भी विश्वास था। वह मानव-जीवन को दूसरे जगत की बेहतर दुनिया की तैयारी और ईश्वर के रास्ते का एक पड़ाव समझता था। उसने हमारे इस संसार की तुलना टक-साल से की है—

> यह नश्वर संसार विधाता की टकसाल
> जो यहां पुण्य पाते वहां भी विराजते
> जो यहां निखद्द वहां भी यह हाल
> हे कुदालसंगमेश्वर।

धातुखंड पर टकसाल की मोहर होने से ही बाहर उसकी सिक्के के रूप में

स्वीकृति है। इसी तरह मानव की इस संसार में स्वीकृति होनी चाहिए तभी दूसरी दुनिया में उसकी स्वीकृति हो पायगी। कई बार बसव केवल एक ही बिम्ब द्वारा कथ्य के पूरे विस्तार को चित्रित कर देता है। अधोलिखित वचन पर इस कोण से विचार किया जाय :

क्या घर का मालिक बाहर है,
या भीतर ?
देहरी पर घास जम रही है;
घर क्या है—
धूल का बर्तन है,
क्या गृह स्वामी बाहर गया है
या घर में है ?
जब झूठ तुम्हारे देह में धंसा है
और दिल में वासना का फांस है
तो घर का मालिक
भीतर नहीं है—हो नहीं सकता,
कुदालसंगमेश्वर।

बसव ने पापी की देह की तुलना एक परिव्यक्त घर से की है—उसका बाहरी रूप ही घोषणा कर देता है कि गृहस्वामी अब यहां नहीं रहता। ऊपर के वचन में बहुत सुंदर तरीके से व्यंजित किया गया है कि स्वामी के रहने के लिए देह की आंतरिक और बाह्य शुद्धि होनी जरूरी है।

सरस्वती, बसव पर प्रसन्न हैं। यद्यपि उसकी शब्दावली सरल है किंतु वह सांकेतिक है। नीचे कहा गया वचन सरल भाषा में एक विचार प्रस्तुत कर देता है किंतु गंभीरतर अर्थ की व्यंजना करता है :

पति उपासक है
दिव्य शिवलिंग का,
पत्नी पूजती है
श्मशानों की देवी को।
पति पाता है प्रसाद
चरण धोने से;
पत्नी के पास है मदिरा और मांस।
जिनके बर्तन भांडे मलिन हैं
उनकी धार्मिकता
ताड़ी-कुण्ड को बाहर से

धोने के समान है
हे कुदाल संगम नाथ ।

स्पष्ट ही इस वचन का सरोकार मतांतरण की समस्या से है । पति वीरशैव हो चुका है अतः उसकी आदतें सफाई पसंद हैं जबकि पत्नी में असभ्य आदतें पूर्ववत् हैं । इस परिवार की धार्मिकता की तुलना ताड़ी के उस बर्तन से की गई है जिसे बाहर से तो मांजा गया है मगर अंदर से घिना रहा है । प्रसंगवश इसकी व्यंजना (व्यंग्यार्थ अनायास हो सकता है) है कि पति और पत्नी किसी बर्तन के बाहरी और भीतरी हिस्से हैं । उपमा भारतीय समाज में पति और पत्नी की जिम्मेदारी के स्वरूप को भी व्यंजित करती है—पुरुष ज्यादातर रोजी रोटी के लिए बाहर काम करता है और नारी घरेलू चिंता करती है । एक व्यंजना और है—नारी, सामान्य रूप से ज्यादा रूढ़िबद्ध होती है ।

आरंभिक कन्नड साहित्य में उपमा और रूपक के मामले में कम ही कवि हैं जिनकी तुलना बसव से हो सकती है । इसके अतिरिक्त एक अच्छा अध्यापक होने के नाते बसव अपनी उक्तियां दुहराता है, एक जैसी संरचना का इस्तेमाल करता है, एक ही वाक्य रचना में संस्कृत और कन्नड़ के वाक्यांशों को प्रस्तुत करता है । कई बार वह ग्राम्य कहावतों, मुहावरों और लोकविश्वासों के माध्यम से जनता तक अपने भाव-विचार पहुंचाता है ।

अपने एक वचन में बसव ने कहा है कि वह छन्दों के नियमों को नहीं मानता बल्कि अपनी मर्जी से (स्व छन्द से) ही गाना जानता है । एक दूसरे वचन में वह लोगों को सिखाता है कि अपनी बात में कैसा शब्द प्रयोग करना चाहिए :

यदि कुछ कहना है तो शब्द तुम्हारे हों
मोती-धागे में पिरोये से ।
यदि कहना है तो शब्द तुम्हारे हों
मानिक की सीपी से फूटती कांति जैसे
यदि कहना है शब्द तुम्हारे
तो नीलमणि से निकलती कौंध हों
यदि कहो तो कहे परमात्मा
अरे, अरे, यही बात है सच ।
किन्तु यदि चेष्टा ही प्रकट करे शब्द तुम्हारे
कुदाल संगम क्या करें चिंता तुम्हारी ।

यह वचन बसव की रचनाओं की भाषा का खुलासा करता है । उसके तईं

अपने को पूरी तरह से और सटीक अभिव्यक्त करने के लिए भाषा एक औजार भर है। उदाहरण के लिए नीचे का वचन देखें :

लिंग की पूजा के बाद
तुम्हें जंगम भीरू होना चाहिए।
मत अकड़ो
जैसे कि खूंटा निगला हो
यदि तुम झुकते हो, पूरे उगे
कदली समूह की तरह
तो कुदालसंगमेश्वर
सब सिद्धि देगा जो मांगोगे।

प्रथम दो पंक्तियों में भक्त से अपेक्षित कर्त्तव्य का शुष्क कथन मात्र है। और अंतिम दो भी उसी शुष्क तौर पर हैं कि भगवान् भक्त को सब अभीष्ट देता है यदि वह विनम्रता सीख लेता है। किंतु नीरस अर्ध-धर्मशास्त्रीय तर्क चमत्कारपूर्ण ढंग से सबसे प्रभावशाली कविता में रूपान्तरित हो जाता है जब बसव बिम्बों को सटीक तरीके से अपनी कविता के ताने बाने में बुनता है! खूंटा निगलने वाला झुक नहीं सकता। घमंड ने उसे इतना अहंकारी बना दिया है कि ईश्वर उसकी पहुंच से बाहर हो गया है। किन्तु यदि भक्त पूरे उगे कदली समूह की तरह झुकता है तो परमात्मा प्रसन्न होता है। पूरे उगे केले के पेड़ के झुकने (अपने भार से) का बिम्ब उस भक्त का है जो परिपक्व भी है और विनम्र भी। वह समझ गया है कि विनम्रता ही सब कुछ है। इसलिए वह अपने विधाता के आगे पके केलों के समान कृतज्ञतावश झुकता है।

दूसरा व्यंग्यार्थ भी स्पष्ट है। फलवाले केले के पेड़ के अंकुर होते हैं किन्तु वह अपना काम (फल देने का) करके मर जाता है। इसी तरह कदली समूह की तरह भक्त का दूसरा जन्म नहीं होता और वह ईश्वरत्व को प्राप्त हो जाता है।

बसव की सजग शब्द योजना का एक उदाहरण :

श्रीमंत बनवाते हैं
शिवालय—मैं क्या करूं
निर्धन हूं हे ईश्वर।
मेरी देह मंदिर है
इसके स्तंभ मेरे पांव हैं
स्वर्णकलश है मेरा शीर्ष
सुनो कुदालसंगमेश्वर

स्थावर का नाश है
और जंगम का नहीं।

प्रारंभिक पंक्तियों में कुछ भी महत्त्व का नहीं है। केवल सामान्य प्रतिक्रिया को कह दिया गया है। भक्त गरीब है और वह ईश्वर के प्रति अपना अनुराग प्रकट करने के लिए धनी लोगों से होड़ नहीं कर सकता—मंदिर नहीं बनवा सकता। इसलिए वह विनम्र है। किन्तु यह विनम्रता एक मुखौटा है। क्रमशः मुखौटा उतरता है। बसव इस कल्पना से कि उसकी देह ही मन्दिर है टांगे स्तम्भ और सिर कलश है अपने को तसल्ली देता है। अपने को तसल्ली देने का यह भाव भी ज्यादा देर नहीं टिकता। यह नाटकीय मोड़ लेकर अत्यधिक स्वाग्रही हो जाता है। वह कहता है :

स्थावर का नाश है,
और जंगम का नहीं।

धनी विशाल मंदिर तो बनवा सकते हैं। किंतु मंदिर तो काल कवलित होगा ही। वे पुराने होकर टूट फूट जायेंगे। बाकी काम वायु और जल कर देंगे। किन्तु जंगम अर्थात् सचल अनश्वर है। यह मानव आत्मा की जीवन नित्यता है। हम देख सकते हैं कि बसव धनी लोगों पर उल्लसित होकर हंस रहा है।

बसव और सहयोगियों ने जनता को प्रेरित किया और उसमें भाषा के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करने की उत्सुकता पैदा की। परिणाम हमारे सामने है : चार सौ पचास से अधिक लेखकों ने वचनों की रचना की है। यदि हम कह सकें तो यह एक प्रकार का जन-साहित्य है। यह सच है कि कईयों ने सुन्दर वचनों की रचना की है। किंतु जैसा कि होता आया है, इसमें काफी कचरा भी है। मूल बात है कि साहित्य का कोई भी विद्यार्थी यह जानकर विस्मित हो जाएगा कि बसव और सहयोगी इतने लोगों को रचना की ओर प्रेरित करने में समर्थ हुए।

कई वचनकारों ने अपनी बोलियों में आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त किया है। अपने धंधे से संबद्ध शब्दों और वाक्यांशों की भिन्नता के कारण एक बढ़ई या ग्वाले या मछुआरे की अपनी बोली[1] होती हैं। विविध कायकों अथवा धंधों में संलग्न वचनकारों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए अपने धंधों की शब्दावली का इस्तेमाल किया है। उदाहरण के लिए एक चरवाहे के लिए गायें (जिनकी देखभाल करना उसका काम है) इन्द्रियों का प्रतीक हों और वह कोड़े

1. इस तरह की बोली को क्षेत्रीय बोली अथवा केवल बोली से अलगाने के लिए 'सामाजिक बोली' या आजीविका संबंधी बोली की संज्ञा दी जाती है।

तथा गाय का प्रयोग अपने आध्यात्मिक अभ्यास को व्यक्त करने के लिए करे। एक नाई के लिए दर्पण, कैंची, कंघी और उस्तरा उसकी साधना के अनुभव को अभिव्यक्ति देने में प्रतीक बनें। इस तरह की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति वचन साहित्य को समृद्ध करती है और वैविध्यपूर्ण बनाती है, मगर इन प्रतीकों में कई अस्पष्ट रहते हैं और उनकी सही व्याख्या नहीं हो सकती। यह जो भी है, किंतु हर किसी पर यह छाप तो पड़ती ही है कि इन साधकों ने अनुभव किया और अपने कायक के संदर्भ में तथा अपनी बोली में उसे अभिव्यक्त भी किया।

पुनः साहित्यिक अथवा गंभीर लेखन की दृष्टि से अनेक लेखक सामान्य और महत्वहीन लग सकते हैं किंतु सामाजिक क्रांति की दृष्टि से वचन साहित्य का विस्तार अपने में महान है। इसका श्रेय बसव और उसके सहयोगियों को जाता है।

वचन स्थानीय मिट्टी में उगने वाले फूल है। भाषा, शैली, रूप और उद्देश्य पूरी तरह से देशी हैं। उन पर किसी तरह का बाहरी प्रभाव नहीं है। वचनों के किसी अच्छे प्रतिनिधि संग्रह को निस्संकोच कन्नड़ द्वारा भारतीय और विश्व साहित्य को खास अवदान मानना चाहिए।

11. उपसंहार

यद्यपि बसव को दिवंगत हुए आठ सौ वर्ष गुजर चुके हैं किंतु उसके अनुयायियों के मन में उसकी याद आज भी ताजा है। उसके अनुयायी कर्णाटक के बड़े समुदायों में एक हैं।[1] वे स्नेह से उसे बसवन्ना कहकर याद करते हैं। (कन्नड़ में अंतिम अन्ना का अर्थ है बड़ा भाई)। वीरशैव लिपिकों ने जो तालपत्र पर पांडुलिपियों की नकल की है उनमें अधिकांश पर आरंभ से ही लिखा होता है—श्री बसव लिंगाय नमः' अर्थात् श्री बसवलिंग को नमन। गांवों में दैवी प्रकोप तथा दूसरे खतरे होने पर लोग 'बसव बसव' कहते हैं—इस आशा से कि विपत्ति टल जाएगी। प्रतिवर्ष जून महीने में एक दिन बसव का जयन्ती पर्व मनाने के लिये तय कर लिया जाता है। निरक्षर लोग अपने घर साफ करते हैं, स्नान कर शुद्ध होते हैं, नये कपड़े-लत्ते पहनते हैं और शिवमंदिर जाकर पूजा करते हैं। इसी दिन विशेष व्यंजन भगवान को भोग लगाने के बाद खाये जाते हैं। कस्बों और नगरों में बसव और उसके आंदोलन के स्मारक के रूप में भाषण और पुराण पाठ का आयोजन होता है। बसव के निकट सहयोगी सिद्धर्म का वचन है : "बसव का स्मरण· सुख के महासमुद्र में गोता लगाने जैसा है।" बसव के अनुयायियों की भावना को इतने सटीक शब्दों में शायद ही किसी और ने कहा हो। कालक्रम से बसव के सामाजिक आर्थिक आंदोलन के साथ ही वे चीजें जुड़ गई जो किसी भी संगठित धर्म को आवश्यक रूप से वलयित किये रहती हैं। समय के साथ अधिकाधिक लोग इस धर्म से आकर्षित होते गये तथा वीरशैव प्रचारकों ने उत्साह के साथ अपने धर्म का प्रचार-विस्तार किया। महान संतों, राजनेताओं, कवि-दार्शनिकों तथा विद्वानों ने इस धर्म को लोकप्रिय बनाने का जीजान से प्रयास किया। किंतु उनमें से किसी को भी समाज सुधारक नहीं कहा जा सकता। सर्वज्ञ नामक कवि (1600 ई०) ही वास्तविक धार्मिक क्रांतिकारी था किंतु वह भी त्यागी कार्यकर्त्ताओं का दल तैयार नहीं कर पाया और फलस्वरूप अकेली

1. कर्णाटक की कुल जनसंख्या में 20 से 21 प्रतिशत तक अर्थात् दो करोड़ सत्तर लाख तक लिंगायत हैं। लिंगायत बड़ी संख्या में कर्णाटक से बाहर जैसे महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडू में रहते हैं।

शक्ति ही रहा। उनके वचन जो वस्तुतः तीन चरणों वाले छन्द हैं (त्रिपदी) बहुत लोकप्रिय थे और अब भी हैं। किंतु हम यह तय करने की स्थिति में नहीं है कि समाज पर उनका कितना प्रभाव पड़ा। बसव और उसके अनुयायियों द्वारा सुविकसित वचन परम्परा को परवर्ती अनुयायियों ने छोड़ दिया। बसव के बाद आने वाले कवियों ने वचनों के स्थान पर लम्बे आख्यानों और काव्यों को तरजीह दी। किंतु बसव के आंदोलन का कन्नड़ साहित्य पर अपना प्रभाव पड़ा। बसव से पहले के कवि केवल पौराणिक कथावस्तु ही लेते थे। बसव के परवर्ती वीरशैव कवियों ने मानवीय वस्तु को चुना और सरल भाषा में काव्य रचना की। इसका असर दूसरे मतों से जुड़े कवियों पर भी हुआ।

बसव और सहयोगियों द्वारा रचे हुए वचनों की संख्या अतिविशाल रही होगी। परंपरा का मानना है कि लाखो वचन थे। कुछ लापरवाही से खो गये और कुछ तेरहवीं शती के मुस्लिम हमलों में नष्ट हो गये। इस्लाम में हिंदुत्व को बचाने के उद्देश्य से 1336 ई० में विजय नगर साम्राज्य उठ खड़ा हुआ। इन राजाओं के हितकारी संरक्षण में पंद्रहवीं शती में वचनों का संग्रह क्रमबद्ध करने और भाष्य करने का काम हुआ। पंद्रहवीं शती के कुछ रहस्य साधकों ने भी वचनों की रचना की है। इनमें वो बात नहीं है जो पहले के वचनों में थी। बसव और दूसरों द्वारा रचे गये संपादित और मुद्रित वचन बारह हजार से ज्यादा हैं। नई पांडुलिपियों की खोज के साथ हर साल नये नये वचन प्रकाश में आ रहे हैं।

बसव संत पुरुष थे। अन्य संतों की भांति उनकी अपनी कमजोरियां थीं। यह तथ्य है कि वह जीवन भर अपने को पूर्ण करने के लिए संघर्ष रत रहे। यह सूचक है कि वह जन्मजात सिद्ध (पूर्ण व्यक्तित्व) नहीं था। हम, शायद उन तमाम बातों की सराहना न कर पायें जो उसने कहीं और आचरण किया। उसकी कथनी और करनी के कई पहलुओं पर तब की सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से विचार करना चाहिए। तभी उसकी सार्थकता स्पष्ट होगी। उसकी ये कमजोरियां उसे अधिक मानव के रूप में प्रस्तुत करती हैं जिससे उसके प्रति स्नेह बढ़ता ही है।

संभवतः आज का वीरशैव समाज बसव के स्वप्नों के अनुसार न हो। किंतु क्या कोई भी धर्म या समाज अपने पैगम्बर की आशा के अनुरूप हो सका है ? तथापि बसव के गहन अध्ययन से हम आज भी उसकी शिक्षा की प्रासंगिकता पाते हैं। उसके प्यार, सच्चाई, दया, मानवता को समानता का संदेश, समाज के सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य कायक का विधान, समाजवादी दृष्टिकोण,

गरीबों और शोषितों के प्रति हमदर्दी आदि को बीते हुए युग के आदमी की बातें कहकर टाला नहीं जा सकता ।

कहा जाता है कि बेलगांव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सभापतित्व करते हुए महात्मा गांधी ने टिप्पणी की कि भारत में आज जो वह करने का प्रयास कर रहे हैं—दरअस्ल वह बारहवीं सदी में बसव कर चुके हैं। यह आधुनिक समय के महान समाज सुधारक द्वारा दी गई श्रद्धांजलि है। आधुनिक काल के (नव्य) कवि और साहित्यकार पुराने कन्नड़ साहित्य के प्रति बहुत सहानुभूतिशील नहीं हैं, फिर भी वे वचन साहित्य को गंभीरता से लेते हैं और प्रयासपूर्वक उसका अध्ययन करते हैं। ऊपर जिन दो बातों का उल्लेख हुआ है, उनसे, सामाजिक इतिहास और साहित्य, दोनों ही दृष्टियों से, आज भी बसव के अध्ययन की प्रासंगिकता स्पष्ट होती है।

संदर्भ-चयन

प्राचीन रचनाएं (कन्नड़)

1 अक्कन वचनगलु (सं० एल० बसवराजु, मैसूर 1966)

2 अल्लमना वचन चंद्रिके (सं० एल० बसवराजु, मैसूर 1966)

3 बसवन्ननवर वचनगलु (सं० एस० एस० बसवनलाल। धारवाड 1962)

4 बसव पवड (सं० बी० एन० चंद्रय्या, मैसूर 1967)

5 बसव पुराण (सं० आर० सी० हीरेमत, धारवाड 1958)

6 बसवराजदेवर रागले (सं० टी० एस० वेंकन्नय्या, मैसूर 1965)

7 चन्नबसवन्ननवर वचनगलु (सं० आर० सी० हीरेमत, धारवाड 1965)

8 चोरबसवचरिते (बेल्लरी, 1886)

9 देवरदसीमय्या वचनगलु (सं० एल० बसवराजु, मैसूर, 1970)

10 लिंगलिवविलासचरित्र (सं० एस० एस० भूस्नुर्मठ, धारवाड 1956)

11 मोलिगे भरय्या मात्तु रानी महादेविया वचनगलु (सं० चन्नप्पा उत्तंगी और एस० एस० भूस्नुर्मठ, धारवाड, 1950)

12 नीलम्मना वचनगलु मात्तु लिंगम्मना वचनगलु (सं० आर० सी० हीरेमत, धारवाड़, 1968)

13 समयपरीक्षे (सं० बी० एस० कुलकर्णी, धारवाड़, 1958)

14 शिवदासगीतांजलि (सं० एल० बसवराजु, मैसूर, 1963)

15 शून्यसम्पादने (सं० एस० एस० भूस्नुर्मत, रावुर 1958)

16 शून्यसम्पादने (सं० एल० बसवराजु, चित्रदुर्ग 1969)

17 सिद्धर्मचरित्र (सं० टी० एस० वेंकन्नया तथा डी० एल० नरसिंहाचर, शिमोगा, 1941)

18 सिद्धरम साहित्य संग्रह (सं० चन्नप्पा उत्तंगी, शोलापुर, 1955)
19 वृषभेन्द्रविजय (अपरनाम बसवराज विजय सं० आर० सी० हीरेमत, 1968)

आधुनिक रचनाएं (कन्नड)

1 चिदानंद मूर्त्ति, एम :
बसवन्नानवरु (मैसूर, 1967)

2 चिन्तामणि हलेपेटि :
युगप्रवर्तक बसवन्नानवरू (मैसूर, 1944)

3 देसाई, पी० बी० :
कर्णाटकड़ कलचुरिगलु (कन्नड साहित्य परिषत् पत्रिके, 36, 1—2; 37, 1—2)

4 गुंजल, एस० आर० बसव
साहित्य दर्पण (बंगलोर, 1967)

5 मुगली, आर० एस० :
कन्नड साहित्य चरित्रे (मैसूर, 1953)

6 नरसिंहाचार, आर० :
कर्णाटक कविचरिते (वाल्यूम-I : बंगलोर, दूसरा संस्करण, 1961; वाल्यूम-II बंगलोर, 1919; वाल्यूम-III : बंगलोर 1929)

7 पटिला मल्लनगौड :
श्री बसवेश्वर मेले होसनेलकु (बेलगाम, 1966)

8 श्रीनिवास मूर्त्ति, एम० आर०,
भक्तिभंडारी बसवन्ननवरु (बंगलोर, 1931)
: वचनधर्मसार (मैसूर, 1946)

9 श्रीकन्तैय्या टी० एन० :
महादेवीयक्कन केलवुवचनगलु (काव्यसमीक्षे, मैसूर 1947)

तेलगु

1 बसवपुराणमु (सं० एन० वेंकेट राव, 1952)

अंग्रेजी

1 देसाई, पी० बी० :
बसवेश्वर एंड हिज टाइम्स (धारवाड़, 1968)

2 देवीरप्पा, एच० (संपा०) :
वचनॉस आफ बसवन्ना (बसव का अनुवाद लेखक—एल० एम० ए० मेनेजेस और एस० एम० अंगदी, सिरीगेरे, 1967)

3 फ्लीट, जे० एफ० :
इयान्सिटीस आफ कन्नड़र्स डिस्ट्रिक्स (बाबे गजेटियर, 1. 1896)

4 गोपाल, बी० आर० :
लेटर चालुक्यास आफ कलवानी (अप्रकाशित थीसिस)

5 हुनशाल, एस० एम० :
द लिंगायत मूवमेंट (धारवाड़, 1947)

6 काणे, पी० वी० :
हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, 11 (पार्ट—1—11, पुणे, 1941)

7 कुप्पुस्वामी आयंगर, जी० आर० :
कलचुरीज आफ कल्याणी एंड देअर टाइम्स (अप्रकाशित थीसिस)

8 मजूमदार, आर० सी० (संपा०) :
द स्ट्रगल आफ एम्पायर (बंबई, 1957)

9 नंदीमथ, एस० सी० (संपा०) :
ए हैंडबुक आफ वीरशैविज्म (धारवाड़, 1942)

10 नीलकांत शास्त्री, के० ए० :
ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया (आक्सफोर्ड, 1966)

11 रामानुजम, ए० के० एवं
कृष्णमूर्ति, एम० जी० : सम कन्नड़ पोयम्स (कलकत्ता, 1967)

12 वाडेयार, एस० एस० (संपा०) :
श्री बसवेश्वर (बंगलूर, 1967)

13 सखारे, एम० आर० :
हिस्ट्री एंड फिलासफी आफ लिंगायत रिलीजन (बेलगांव 1942)

14 सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता :
ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी, खंड 5 (कैम्ब्रिज, 1962)

अभिलेख

1 एपिग्राफिका इंडिका, XXI

2 बॉम्बे कर्नाटक इंस्क्रिप्शनस् I, भाग एक

3 1956–57 में भारतीय एपिग्राफी पर वार्षिक रिपोर्ट

4 एपिग्राफिया कर्नाटिका, III और V वाल्यूम

5 कालबुर्गी, एम० एम० : शासनगलल्ली शिवशरणरु
(कन्नड़ भाषा में; धारवाड़, 1970)